अध्यायों का परिचय

यह शोध जीवनीपरक उपन्यास पर किया गया है। लेखक नरेंद्र कोहली के द्वारा स्वामी विवेकानंद के जीवन पर छः खंडो में लिखित तोड़ो कारा तोड़ो नामक उपन्यास को आधार ग्रंथ के रूप में लिया गया है। इस शोध प्रबंध के प्रथम अध्याय में हिंदी जीवनीपरक उपन्यास की परम्परा, हिंदी जीवनीपरक उपन्यास का स्वरूप एवं हिंदी जीवनीपरक उपन्यास में निहित आध्यात्मिक स्वरूप पर चर्चा की गई है। द्वितीय अध्याय में लेखक नरेंद्र कोहली के उपन्यासों का परिचय देते हुए यह बताया गया है कि वे किस प्रकार के उपन्यास लिखते हैं। तृतीय अध्याय में भारतीय आध्यात्मिक दर्शन की परम्परा का परिचय प्रस्तुत किया गया है तथा भारतीय दर्शन में स्वामी विवेकानंद के चिंतन के विषय में भी बताया गया है। शोध प्रबंध का चतुर्थ अध्याय तोड़ो कारा तोड़ो उपन्यास पर केंद्रित है। इसके प्रथम उप-अध्याय में आध्यात्मिकता और साधना पक्ष पर बात की गई है। ठीक ईसी प्रकार द्वितीय उप-अध्याय में तोड़ो कारा तोड़ो उपन्यास में निहित समकालीन परिप्रेक्ष्य को विभिन्न बिंदुओं जैसे सच्चे दानी का अभाव, भक्त का दिखावा, साधु होने का दिखावा, स्वतंत्रता का अभाव आदि में दिखाया गया है। तृतीय उप-अध्याय में तोड़ो कारा तोड़ो उपन्यास में निहित स्वामी विवेकानंद के व्यक्तित्व के विकास के विषय में चर्चा की गई है। चतुर्थ उप-अध्याय में जीवन दर्शन, समाज और संस्कृति के विषय में बताया गया है। पंचम अध्याय में तोड़ो कारा तोड़ो उपन्यास में निहित शिल्प विधान की चर्चा करते हुए जीवनीपरक उपन्यास की शैली एवं तोड़ो कारा तोड़ो उपन्यास के मूल भाव तथा उसमें निहित शिल्प के विषय में बात रखी गई है। षष्ठ अध्याय में तोड़ो कारा तोड़ो की प्रासंगिकता को व्यक्ति निर्माण, समाज निर्माण एवं राष्ट्र निर्माण के संदर्भ में देखा गया है। साथ ही इन तीनो बिंदुओं का मूल्यांकन पूर्व एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य के आधार पर किया गया है।

प्रथम अध्याय : जीवनीपरक उपन्यास

i. हिंदी के जीवनीपरक उपन्यास की परम्परा

जीवनीपरक उपन्यास व्यक्ति के जीवन पर आधारित होता है। भारत के प्रख्यात संत श्री श्री आनंदमूर्तिजी के अनुसार "जीवन की गति के साथ चलना ही जिसका धर्म है उसे ही साहित्य कहता हूँ"।[1].. भारत के संतों ने साहित्य को मानव जीवन की गतिशीलता से जोड़कर देखा है। साहित्य में जीवन की गतिविधियाँ निहित होती हैं। अतः साहित्यकारों ने मानव जीवन को आधार बनाकर साहित्य की रचना की है। मुंशी प्रेमचंद का कहना था "यों कहना चाहिए कि भावी उपन्यास जीवनचरित होगा"।[2].. अर्थात् मुंशी प्रेमचंद दूरदर्शी व्यक्ति थे जो यह जानते थे कि मानव के जीवन को आधार बनाकर भी भविष्य में उपन्यासों की रचना की जा सकती है। लेखक नरेंद्र कोहली ने 'जीवनी' और 'उपन्यास' में अंतर स्पष्ट करते हुए कहा "एक जीवनी और उपन्यास में अंतर यह है कि जीवनी में आप कहीं से कुछ भी जोड़ सकते हैं। उसमें क्रम भी आवश्यक नहीं है। इसके साथ जिस व्यक्ति की जीवन कथा या जीवनी लिखी जा रही हो केवल वहीं महत्वपूर्ण होता है। उसके जीवन काल में जो दूसरे चरित्र या पात्र होते हैं जो उसके सम्पर्क में आए हैं... उनके चरित्र का चित्रण महत्वपूर्ण नहीं होता है। बात जहाँ तक उपन्यास की है उसमें घटनात्मकता की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।..."।[3]..

प्रो० गोपाल राय की मान्यता है कि हिंदी साहित्य में जीवनीपरक उपन्यासों के परम्परा की शुरुआत हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'बाणभट्ट की आत्म कथा' (प्रकाशन 1946) से हुई थी। बाणभट्ट की आत्मकथा में लेखक ने अपने निजी पारिवारिक जीवन का वर्णन किया है अतः इसे आत्मकथात्मक जीवनीपरक उपन्यास कहा जा सकता है।

इस परम्परा में अगला नाम अमृतलाल नागर का है। उनके द्वारा रचित जीवनीपरक उपन्यास 'मानस का हंस' तुलसीदास के जीवन पर आधारित है (प्रकाशन 1972) और 'खंजन नयन' सूरदास के जीवन पर आधारित है (प्रकाशन 1981)। मानस का हंस नामक

उपन्यास तुलसीदास के जीवन पर आधारित है। इस उपन्यास में उन्होंने तुलसीदास को एक सहज मानव के रूप में चित्रित किया। गोस्वामीजी की कोई प्रामाणिक जीवनी उपलब्ध नहीं थी, उन्हें एक साधारण मानव के रूप में दर्शाना काफ़ी चुनौतीपूर्ण था। यह भक्तिकाल के समय का एक सांस्कृतिक इतिहास भी है। इस उपन्यास में कथा की शुरुआत रत्नावली के जीवन की अंतिम घड़ी और अपने शिष्यों के साथ तुलसी के राजापुर आगमन की यात्रा की कथा से होती है। लेखक लिखते हैं कि “रामजी कृपालु हैं प्रभु ! राजापुर अब अधिक दूर नहीं है। हो सकता है चलने के समय तक पानी रुक जाए”।[4].. इससे यह स्पष्ट होता है कि तुलसी को एक असामान्य मानव के रूप में भी दर्शाने का प्रयास किया गया है। यदि उनमें असाधारणता या दिव्यता नहीं होती तो उन्हें इस बात का बोध कैसे हो पाता कि आज ही उनकी भार्या की मृत्यु होने वाली है और उन्हें अंतिम बार के लिए अपनी भार्या को दर्शन देना चाहिए अतः उन्हें राजापुर लौट जाना चाहिए। लेखक लिखते हैं कि "बाबा कहने लगे -- जेठ महिने में ही वाराह क्षेत्र में आ गए थे। चातुर्मास वहीं बिताने का विचार था। परन्तु कुछ दिन पहले स्वप्न में हमें हनुमानजी से ऐसी प्रेरणा मिली कि राजापुर होते हुए चित्रकूट जाएँ और वहीं चातुर्मास पूरा करें”।[5]..

आलोच्य गद्यांश में लेखक अपने उपन्यास के पात्र तुलसीदास से कहलवाते हैं, ‘हनुमानजी से कुछ ऐसी प्रेरणा मिली’। यह बात उन्होंने श्यामो की बुआ को बताया था। हालाँकि उन्होंने यह नहीं बताया था कि हनुमान ने उन्हें क्या कहा था। कुछ ऐसी बातें होती हैं जो महापुरुष रहस्य में ही आवृत रखना चाहते हैं क्योंकि इसी में इस विषय की भलाई निहित होती है। उदाहरण हेतु ठाकुर श्री रामकृष्ण के अंतिम समय में स्वामी विवेकानंद के साथ आध्यत्मिक विषय को लेकर कुछ ऐसी बातें हुईं थीं जिसके विषय में बाद में स्वामीजी ने अपने गुरुभाइयों से कहा था कि ‘ठाकुर से उनकी इस विषय में क्या बातें हुई हैं वह आजीवन उनके पास ही रहस्य बनकर समाहित हो जाएगा’। तुलसी के दिव्य स्वरुप का वर्णन करते हुए लेखक नागर लिखते हैं कि "मानो मनुष्यों के समाज में कोई देवजाति का पुरुष आ गया हो”।[6].. यहाँ एक और बात है जिस पर ध्यान देना चाहिए, लेखक बता रहे हैं कि यह लोगों के लिए अत्यंत आश्चर्य का विषय है कि अचानक महात्मा

तुलसीदास माताजी की बीमारी के समय चले आए हैं। वे ही रत्नावली को सिया-राम का नाम सुनाते हैं और रत्नावली धीरे-धीरे भगवान राम और सीता का नाम लेती है।लेखक लिखते हैं कि "बाबा ने मैया का हाथ अपने हाथ से उठाकर और प्रेम से दबाकर धीरे से कहा – बोलो, बोलो सीता-राम, सीता-राम। सी .....ता .....रा। एक हिचकी आई, मैया की आँखें खुली की खुली रह गईं और काया निश्तेज हो गई। मृत देह पर जीवन की एक छाप अब तक शेष थी। विरह से सुनी रतना मैया सुहागिन होकर परम शांति पा गई थी"।[7].. परम्परा पर बात करते हुए जब भी आध्यात्मिक महापुरुषों की जीवन गाथा को लेकर लिखे गए उपन्यासों का मूल्यांकन किया जाता है तब उनके आध्यात्मिक स्वरूप पर विचार किया जाना चाहिए क्योंकि कोई भी महापुरुष चाहे सूर हों, तुलसी हों या अन्य कोई भी महापुरुष हों वे इस धरती पर आध्यात्मिक कार्य को सुचारू रूप से सम्पन्न करने के लिए ही आते हैं। आध्यात्मिकता के माध्यम से मानव जीवन का कल्याण करना ही उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य होता है। भले ही वे सामान्य मानव हैं लेकिन साथ ही साथ यह भी नहीं भूलना चाहिए कि भगवान की अलौकिक क्षमता को लेकर वे इस धरती पर आते हैं। अतः तुलसीदास भी इस क्षमता को लेकर पैदा हुए थे। तभी रामू द्विवेदी जब तुलसीदास का ही पद बड़े ही सुरीले ढंग से गाता है तो तुलसी रामू द्विवेदी की भक्ति की भावना को देखकर आत्मविभोर हो जाते हैं। इस तरह से किसी व्यक्ति के जीवन में हुई घटनाओं पर जीवनीपरक उपन्यासों की रचना होती है।

'खंजन नयन' सूरदास की जीवनी है। इस उपन्यास में सूरदास के व्यक्तित्व को लेखक ने उभारा है। इस उपन्यास में दृष्टिहीन सूरदास के संघर्षपूर्ण जीवन को दर्शाया गया है। जीवन को सुचारू रूप से संचालित करने के दौरान सूरदासजी को जिन प्रतिकूल परिस्थितियों से संघर्ष करना पड़ा था उसका विस्तार से वर्णन किया गया है। सूर को सामाजिक परिस्थितियों के साथ-साथ राजनैतिक परिस्थितियों का भी सामना करना पड़ा था क्योंकि इनका सम्बंध मानव के जीवन से है। उपन्यास में यह दर्शाया गया है कि एक भक्त किस प्रकार से आर्थिक, समाजिक, मनोवैज्ञानिक परिस्थियियों से जूझता हुआ सूरदास के रूप में रूपांतरित होता है। सूरदास के मन को राधा-भाव में परिणत होता हुआ दिखाया

गया है। इस उपन्यास में सिकंदर के समय की परिस्थितियों का वर्णन किया गया है। सूरदास की आध्यात्मिकता को दर्शाया गया है। सूर की आध्यात्मिकता का एक उदाहरण इस प्रकार है बचपन में एक बार इनकी माँ ने इनके हाथों से श्री राधा-माधव के विग्रह का स्पर्श करवाया था। परिणाम स्वरूप इससे उनके भीतर आध्यात्मिकता का जागरण हो चुका था। सूर के शब्दों में "बचपन में माँ ने एक बार राधा-माधव के विग्रह का परस करवा दिया। वह छुवन अब बिजुली बन गई। मेरी अनामिका के स्पर्श से वह बिजली मेरी तृकुटी में समाती है"।[8].. यही रूपांतरण उनके जीवन को एक अलग पहचान देती है जिससे कि जीवनीपरक उपन्यास उभरकर आते हैं। व्यक्ति को एक साधक बनने हेतु समाज में प्रचलित नकरात्मक गतिविधियों के प्रति अपने मन को समाहित नहीं करना चाहिए। यहाँ अंधा शब्द से अभिप्राय है काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और माया आदि बंधनों के प्रति दृष्टि न देना। सांसारिक मोह-माया कारा है। इससे ऊपर उठकर ही साधक मायाधीश के श्री चरणों में समाहित हो सकता है। स्वयं को मोह और माया से ऊपर रखना ही सबसे बड़ी तपस्या है। लेखक ने सूरदास की जीवन गाथा का वर्णन करते हुए उस समय की सामाजिक परिस्थितियों का भी वर्णन किया है। सूरदास के समयकाल में भारत में सिकंदर का शासन चल रहा था। हालाँकि अकबरादि राजाओं का शासन भी उन्होंने देखा था। सिकंदर का समय ही सूर के लिए काफ़ी संघर्षपूर्ण रहा है। सिकंदर के शासन काल में देश की हिंदू जनता पर काफ़ी अत्याचार हुआ था। उन्हें बलपूर्वक इस्लाम धर्म में धर्मांतरित किया जाता था। देश में आतंक का वातावरण छाया हुआ था। यहाँ तक कि हिंदुओं के तीर्थों आदि में आतंक का वातावरण छाया हुआ था। आतंक के वातावरण का एक उदाहरण इस प्रकार है "सुल्तान के राज में मारकाट के काजे कभी कोऊ बात होवे है भला। त्यौहार कौ दिना, हमारी माँ-बहन के माथे कौ सिंदूर आग की लपटो सौ उठ रयौ है चौराए-चौराए पै। फिर एक ही साँस में भद्दी से भद्दी गालियाँ कहने वाले युवक के मुँह से फूट पड़ीं। उसके नपुंसक क्रोध का अंत विवशता के आँसुओं से हुआ"।[9]..

आलोच्य उपन्यास में यह भी बताया गया है कि एक ओर जहाँ हिंदू समाज के ऊपर तत्कालीन मुस्लिम समाज द्वारा भयंकर रूप से अत्याचार किया जा रहा था वहीं दूसरी

ओर हिंदू परिवारों में, हिंदू समाज के लोगों में विशेष रूप से महिलाओं में अपनी संस्कृति के प्रति एक गहरी आस्था थी। मुस्लिम शासन किसी भी रूप में हिंदुओं की इस अटूट आस्था को समाप्त नहीं कर पाया था। लोग अपने परिवार और समाज की रक्षा के लिए विभिन्न प्रकार के धार्मिक व्रतों और अनुष्ठानों को किया करते थे। महिलाएँ अपने पतियों की प्राण रक्षा के लिए व्रतों और अनुष्ठानों का आयोजन करती थीं। ये सभी घटनाएँ इस प्रकार सूरदास के जीवन को प्रभावित करती हैं जिससे कि उनके जीवन में परिवर्तन होता है।

हिंदी के जीवनीपरक उपन्यासों पर बात करते हुए अगला नाम रांगेय राघव का आता है। ऐतिहासिक और पौराणिक पात्रों की जीवन कथा को लेकर उपन्यास लिखने वालों में रांगेय राघव का नाम हिंदी के पाठकों के लिए एक जाना-पहचाना नाम है। रांगेय राघव द्वारा रचित जीवनीपरक उपन्यास हैं। 1) 'रत्ना की बात', 2) 'यशोधरा जीत गई', 3) लोई का ताना, 4) देवकी का बेटा (प्रकाशन वर्ष 1954), 5) लखिमा की आँखें (प्रकाशन वर्ष 1957), 6) मेरी भव बाधा हरो (प्रकाशन वर्ष 1960)। इन सभी उपन्यासों में राघवजी ने ऐतिहासिक ज्ञान की पुष्टि की है। अलौकिक घटनाओं की काफ़ी तर्क संगत व्याख्या करने का प्रयास किया है और उन्हें इतिहास से जोड़ने का प्रयास किया गया है। रत्ना की बात उपन्यास में गोस्वामी तुलसीदास के महामानवीय व्यक्तित्व को महत्व दिया गया है। लेखक रांगेय राघव लिखते हैं कि "वे कलि युग को काटने वाले परम तपस्वी हैं। अरे भाइया ! वे वाल्मीकि के अवतार हैं"।[10].. यानी कि तुलसी को सामान्य मानव नहीं बल्कि एक महापुरुष के रूप में दर्शाया गया है। तुलसीदास को महर्षि वाल्मीकि का अवतार बताया गया है। नाभादास 'भक्तमाल में लिखते हैं कि 'कलि कुटिल, जीव निस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भयों'। अर्थात् इस कलि काल में मनुष्य के जीवन में व्याप्त अन्याय, शोषण, अत्याचार से संसार के समस्त प्राणियों को बंधन से सम्पूर्ण मुक्त करने हेतु इस घोर कलियुग में वाल्मीकि मुनि ने ही तुलसीदास का अवतार धारण किया है।

इस उपन्यास में लेखक रांगेय राघव द्वारा तुलसी के पिता को उनके प्रति सहानुभूतिशील दिखाया गया है। रांगेय राघव ने यह दर्शाया है कि पिता के मन में अपने पुत्र के प्रति कोई वैर भावना नहीं है। इस उपन्यास में पिता नहीं बल्कि एक वृद्ध ज्योतिषी

रामेत नवजातक का ज्योतिष के आधार पर भाग्य बाँचकर यह बताता है कि इस बालक का जन्म मूलों में हुआ है। यह एक ऐसा बालक है जो अपने ही परिवार के विनाश को साथ लेकर आया है। लेखक ने ज्योतिषी की बातों को इन शब्दों में व्यक्त किया है जैसे "सुनता है मृत्यु हो रही है ! वही इस मूलों में जन्म लेने वाले बालक का दुर्भाग्य है। यह बालक नहीं जन्मा है, यह तेरे सारे कुल को नष्ट कर देने वाला कुठार पैदा हुआ है"।[11].. पिता की यह मान्यता थी कि एक छोटे से बालक के मन में भले-बुरे की पहचान नहीं होती। बालक तो बालक ही होता है। वह तो वास्तव में परमपिता का अंश होता है। इस संसार में जिस व्यक्ति ने भी जन्म लिया है उसे एक दिन जाना ही पड़ता है। इस संसार में कोई भी अमर बनकर नहीं आया है। जो आया है समय आने पर वह तो एक दिन जाएगा ही इसके लिए एक छोटे बच्चे को दोष देना उचित नहीं है।

एक बार तुलसी बाबा बार-बार रामनाम की महिमा का गुणगान करते हुए अस्पष्ट रूप से धीरे-धीरे कुछ बुदबुदाने लगे। उनके एक शिष्य मलूक को कुछ समझ में नहीं आ रहा था। उसने जब अपने गुरु से पूछा कि वे यह क्या कर रहे हैं ? तो तुलसीदास का कहना था कि वे प्रभु श्री राम का नाम ले रहे हैं और उन्हीं का गुणगान कर रहे हैं क्योंकि यहीं मानव की परम गति है। शिष्य ने जब यह कहा कि इतनी बार तो प्रभु श्री रामचंद्र का नाम ले रहे हैं परंतु फिर भी तो उनके कष्टों का निवारण नहीं हो पा रहा है। अपने शिष्य की इस प्रकार की बातों को सुनकर तुलसीदासजी ने जो कहा है उस पर ध्यान देना आवश्यक है क्योंकि यह कहा जा सकता है कि इससे उनके मन की उच्च आध्यात्मिकता और ईश्वर के प्रति अटूट आस्था तथा अनन्य भक्ति भावना का एक परिचय प्राप्त होता है। "बेटा ! जितनी बार नाम मुँह से निकले उतना ही अच्छा है। अब उसके सिवाय सुनने वाला है भी कौन" ? आगे तुलसी कहते हैं कि "राम-राम ! बेटा ऐसा न कह। पाप की बात न कर। दीनबंधु के दरबार में पहुँचना सहज नहीं है नारायण"।[12]..

अपनी अविचलित ईश्वर-भक्ति और अपने हृदय में समाहित उच्च आध्यात्मिकता के परिणाम स्वरूप ही तुलसीदास ईश्वर की महिमा की जानकारी प्राप्त कर पाए थे। यहाँ तुलसी यह बता रहे हैं कि दीनबंधु के निकट पहुँचना सहज कार्य नहीं है। इस बात का

अभिप्राय यह है कि मन में दीनता का भाव लाना आवश्यक है। मानव के मन के भीतर निवास करने वाले छः ऋपुओं का परित्याग करके ही व्यक्ति ईश्वर की प्राप्ति कर पाएगा अन्यथा नहीं। मन में समाहित मद, लोभ, मोह आदि का परित्याग करते हुए दीन बने रहने की बात यहाँ की जा रही है। वे यह भी बताना चाहते हैं कि अगर भगवान से दुःख भी मिलता है तो भी हताश या निराश नहीं होना चाहिए क्योंकि इस प्रकार के दुःख और कष्ट देकर भगवान सदैव अपने भक्त की परीक्षा लेते हैं अत्यंत कष्ट की घड़ी में भक्त के मन में उनकी याद आती है या नहीं। भयंकर दुःख की घड़ी में भी जो अविचलित रूप से अत्यंत निष्ठापूर्वक भगवान की भक्ति में सदैव लीन रहा करते हैं उन्हीं को भगवान की प्राप्ति होती है। भगवान यदि अपने भक्त को दुःख भी देते हैं तो उसे भी मंगलकारक ही मानना चाहिए।

'रत्ना की बात' उपन्यास के शुरू में ही तुलसीदासजी के जन्म के उपरांत उनकी माताजी 'हुलसी' के निधन का समाचार दिया गया है, लेखक लिखते हैं कि "हुलसी का शव बाँधा जा रहा था। नाइन एक छोटे से सद्य:जात बालक को लेकर खड़ी थी"।[13].. वहीं तुलसीदास के जीवन पर ही लिखा गया लेखक अमृतलाल नागर विरचित उपन्यास 'मानस का हंस' में उपन्यास के प्रारंभिक दृश्य में ही उनकी पत्नी रत्नावली की बीमारी और मृत्यु का समाचार वर्णित है। "एक हिचकी आई, मैया की आँखें खुली की खुली रह गईं और काया निश्चेष्ट हो गई। मृत देह पर जीवन की एक छाप अब तक शेष थी। विरह से सुनी रत्ना मैया सुहागिन होकर परम शान्ति पा गई थीं"।[14].. एक ही व्यक्ति के जीवन को अलग अलग चरित्र के माध्यम से दर्शाया जाता है तथा घटनाएँ भी कदाचित मेल नहीं खाती। इस तरह से जीवनीपरक उपन्यासों का निर्माण होता है। इस उपन्यास में तुलसी का नाम रामगुलाम है। नरहरि बाबा जब पूछते हैं तो बालक तुलसी कहता है कि उसका नाम रामगुलाम है। रत्ना की बात नामक उपन्यास से यह ज्ञात होता है कि गुरु नरहरि बाबा ने ही तुलसीदास को रामबोला नाम प्रदान किया। इससे पूर्व तुलसी का नाम गुलाम था। लेखक रांगेय राघव के अनुसार "नरहरि बाबा ने कहा तेरा नाम क्या है वत्स" ?

रामगुलाम ! नहीं आज से तू रामबोला है। इसे पी जा"।[15].. ठीक इसी प्रकार अमृतलाल नागर का 'मानस का हंस' नामक उपन्यास में बचपन में जब घर से उन्हें अशुभ मानकर

निकाल दिया गया था तो वे पार्वती नामक एक निम्न वर्गीय महिला के साथ रहने लगे थे। तब उन्हें अपनी पार्वती मैया से ही ज्ञात होता है कि उनका नाम रामबोला है। नागरजी के उपन्यास में तुलसीदासजी का एक शिष्य रामू द्विवेदी ने जब तुलसी से उनके बचपन के नाम रामबोला के विषय में पूछा तो उन्होंने उसके विषय में रामू से कहा था "राम जाने बेटा। हाँ पार्वती अम्माँ से यह अवश्य सुना था कि मैंने बोलना राम शब्द से ही आरम्भ किया था।[16].. इस प्रकार जनश्रुति के आधार पर होने के कारण मध्यकालीन लेखकों पर केंद्रित जीवनीपरक उपन्यासों में भिन्नता देखने को मिलती है।

आलोच्य उपन्यास को तुलसीदास की पत्नी रत्नावली को केंद्र में रखकर लिखा गया है। तुलसीदास के आध्यात्मिक जीवन में उनकी पत्नी की भूमिका है। रत्नावली के माध्यम से लेखक रांगेय राघव ने यह बताने का प्रयास किया है कि विवाहित स्त्री-पुरुषों में सम्बंध केवल एक पत्नी और एक पति का ही नहीं बल्कि आध्यात्मिक सम्बंध भी है। अर्थात् परिवार में पति को आध्यात्मिक जीवन बिताने के लिए पत्नी को सहायता करनी चाहिए। वास्तविक सहायता एक-दूसरे के प्रति वही होती है। रत्नावली ने तुलसी के प्रति वास्तविक पतिव्रता धर्म का निर्वाह किया था। वह यह चाहती थी कि तुलसी एक अत्यंत ही प्रसिद्ध व्यक्ति बने और आध्यात्मिक मार्ग की ओर उनकी प्रगति बढ़ती रहे। तुलसीदास की पत्नी की मान्यता थी कि अपने पति को आध्यात्मिक जगत की और लौटाना पत्नी का कर्तव्य है। एक बार रत्ना अपने पीहर चली गई तो तुलसी भी उसके प्रति अत्याधिक आकर्षित होने के परिणाम स्वरूप पीछे-पीछे चले गए। तब रत्ना को उन्हें देखकर क्रोध आ गया। उसका कहना था कि जिस प्रकार का आकर्षण तुलसी के मन में अपनी पत्नी के प्रति है ठीक वैसा ही आकर्षण अगर प्रभु श्री राम के प्रति उनके मन में होता तो उनका बेड़ा पार हो जाता। लेखक रांगेय राघव लिखते हैं कि "तुमने मेरे हाड़-चाम से इतना प्रेम किया, इतने अंधे हो गए। अगर इससे आधा भी भगवान से किया होता तो जन्म-जन्मांतर के पाप धुल गए होते"।[17].. पत्नी की इस प्रकार की बातें सुनकर तुलसी के मन में सांसारिक जीवन के प्रति विरक्ति की भावना जाग उठी थी। उन्हें वास्तविकता का अहसास हुआ। उनका मन संसार के प्रति विरक्त होकर ईश्वर के प्रति आकर्षित हो गया। इस प्रकार सांसारिक मोह-माया के प्रति

आकर्षित तुलसी को विशेष रूप से नारी देह के प्रति आकर्षित तुलसी को उनकी पत्नी ने ईश्वर भक्ति के प्रति आकर्षित किया था।

रांगेय राघव विरचित 'भारती का सपूत' नामक उपन्यास हिंदी के प्रख्यात साहित्यकार भारतेंदु हरीशचंद्र के जीवन को आधार बनाकर लिखा गया है। आलोच्य उपन्यास में उनके सम्पूर्ण जीवन, उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। भारतेंदु का बाल-विवाह हुआ था। भारतेंदु के जीवन में घटे हुए बाल-विवाह को दर्शाकर लेखक रांगेय राघव ने तत्कालीन हिंदू बालक एवं बालिकाओं के जीवन में प्रचलित बाल-विवाह की कुरितियों को भी सामने लाने का प्रयास किया है। भक्तिकाल के कवि कबीर के जीवन को आधार बनाकर भी 'लोई का ताना' नामक उपन्यास रांगेय राघव द्वारा लिखा गया है। यह एक ऐसा उपन्यास है जिसमें कबीर के जीवन के द्वारा उस युग की विद्रोहात्मक सामाजिक चेतना में प्रकाश डाला गया है। तत्कालीन समाज में प्रचलित जाति-प्रथा के दंश को भी उपन्यासकार ने उभारने का प्रयास किया है। लेखक रांगेय राघव भी कबीर के जीवन को आधार बनाकर उपन्यास लिखते समय उनकी आध्यात्मिकता को नकार नहीं सके, उसकी उपेक्षा नहीं कर सके। इस उपन्यास में कबीर की आध्यात्मिक चेतना के साथ-साथ सामाजिक चेतना को भी उभारने का प्रयास किया गया है। क्योंकि जब तक आध्यात्मिक जागृति नहीं होगी तब तक सामाजिक जागृति नहीं होगी। ठीक इसी प्रकार जब तक सामाजिक जागृति नहीं होगी तब तक देश के समाज में आध्यात्मिक जागरण सम्भव नहीं होगा क्योंकि आध्यात्मिक जागृति और समाजिक जागृति दोनों एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। जीवन का जुड़ाव समाज से भी है।

भगवान श्री कृष्ण के जीवन को आधार बनाकर रांगेय राघव ने 'देवकी का बेटा' नामक उपन्यास की रचना की है। इस उपन्यास में भगवान श्री कृष्ण को एक ऐतिहासिक पुरुष के साथ-साथ एक अत्यंत ही कर्मठ, पुरुषार्थी और एक त्यागी व्यक्तित्व के रूप में भी दर्शाया गया है। लेखक रांगेय राघव ने श्री कृष्ण का चित्रण एक जननायक के रूप में भी किया है। उदाहरण हेतु गोवर्धन पर्वत को धारण करते हुए इंद्र के प्रकोप से गोकुल के समस्त निवासियों की रक्षा करना श्री कृष्ण की जननायक प्रवृत्ति को ही दर्शाती है। हिंदी जीवनीपरक उपन्यासों में 'यशोधरा जीत गई' उपन्यास भी है। यह उपन्यास भी रांगेय

राघव द्वारा ही लिखा गया है। यह गौतम बुद्ध के जीवन को आधार बनाकर लिखा गया है। इस उपन्यास में गौतम बुद्ध के समय में भारतीय समाज में फैली हुई विषमता का चित्रण किया गया है। तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचलित दास-प्रथा का चित्रण भी आलोच्य उपन्यास में देखने को मिलता है जिससे मानव जीवन दुभर हो चुका था। इस उपन्यास में लेखक रांगेय राघव ने यह भी दर्शाने का प्रयास किया है कि समाज में प्रचलित दास-प्रथा को भारत का तत्कालीन क्षत्रिय समाज किस प्रकार समर्थन किया करता था।

अनेक लेखकों ने हिंदी साहित्य में जीवनीपरक उपन्यासों की रचना करते हुए हिंदी साहित्य को काफ़ी समृद्ध किया। इन्हीं में से एक समकालीन हिंदी साहित्यकार डॉक्टर कृष्णबिहारी मिश्र हैं। डॉक्टर कृष्णबिहारी मिश्र ने श्री रामकृष्ण परमहंस के जीवन को आधार बनाकर एक उपन्यास लिखा है जिसका शीर्षक है 'कल्पतरु की उत्सव लीला'। जिसमें उन्होंने 19वीं शताब्दी के जीवन को एक सार्वकालिक यथार्थ के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। लेखक कृष्णबिहारी मिश्र ने अपने इस उपन्यास में ठाकुर श्रीरामकृष्ण के साधनात्मक जीवन को केंद्र में रखने का प्रयास किया है। वैसे तो यह जीवनी है किंतु उन्होंने रामकृष्ण के जीवन की घटनाओं का आरंभ ही उनके माँ भवतारिणी के मंदिर में पुजारी बन जाने के बाद से किया है। स्वयं लेखक कृष्णबिहारीजी कहते हैं "अपनी वाचिक शिक्षा विधि से सघन तमस में बड़े आलोक की रचना करने वाले उन्नीसवीं शताब्दी के शलाका पुरुष परमहंस रामकृष्णदेव की जीवन-साधना पर मेरी यह पुस्तक केंद्रित है"।[18].. अपने कथन के माध्यम से मिश्रजी ने श्री रामकृष्ण परमहंस की जिस साधनात्मक जीवन की बात अपने उपन्यास में की है वह ठाकुर श्री रामकृष्ण के मंदिर में पुजारी बनने के बाद देवी भवतारिणी की आराधना के माध्यम से समाज के कल्याण के प्रति उनके सम्पूर्ण जीवन का समर्पण है। आलोच्य उपन्यास में रामकृष्ण का जीवन और उन्नीसवीं शताब्दी के बंगाल का परिवेश साकार हुआ है। श्री रामकृष्ण उन्नीसवीं शताब्दी के नवजागरण के अद्वितीय पुरुष थे।

इसी कड़ी में गिरिराज किशोर का नाम भी लिया जा सकता है। गिरिराज किशोर ने गाँधी के जीवन को आधार बनाकर 'पहला गिरमिटिया' (प्रकाशन वर्ष 1999) नामक

उपन्यास लिखा और हिंदी साहित्य में जीवनीपरक उपन्यास की इस परम्परा को आगे बढ़ाकर हिंदी साहित्य की उपन्यास विधा को समृद्ध किया। हिंदी के प्रख्यात साहित्यकार प्रो० गोपाल राय के अनुसार "बीसवीं शताब्दी के लगभग अंत में जबकि महात्मा गाँधी का व्यक्तित्व इतिहास की खोजी और विश्लेषणात्मक दृष्टि से गुज़र चुका है। उस पर नया और सार्थक लिखना चुनौती भरा कार्य है। महात्मा गाँधी आज के इतिहास पुरुष भी हैं और जननायक राष्ट्र पिता भी"।[19].. यानी कि किसी विख्यात व्यक्तित्व की जीवन गाथा को लेकर उपन्यास की रचना करना काफ़ी चुनौतीपूर्ण होता है। लेखक नरेंद्र कोहली की मान्यता है कि जीवनी में अपने तरफ़ से कुछ जोड़ा या जो कुछ व्यक्ति के जीवन में घटा है जिसकी जीवन कथा लिपिबद्ध की जा रही है उसमें से कुछ काटा नहीं जा सकता। यह कोई ठीक विचार नहीं है यह काफ़ी चुनौती भरा होता है। क्योंकि जीवनीपरक उपन्यास के पात्र काल्पनिक नहीं होते। अतः उनका जीवन भी काल्पनिक नहीं होता।

इतिहास और लोक श्रद्धा को आघात न पहुँचाते हुए उपन्यास का पात्र बनाना काफ़ी मुश्किल का काम होता है। 'मानस का हंस' के रचनाकार अमृतलाल नागर को भी इस चुनौती का सामना करना पड़ा था। बात जहाँ तक पहला गिरमिटिया की है गाँधी एक ऐसे ऐतिहासिक पुरुष हैं जिनके जीवन का वह अज्ञात पक्ष बहुत थोड़ा-सा है जो उपन्यास का विषय बन सकता है। यद्यपि ऐतिहासिक तथ्यों की प्रस्तुति में औपन्यासिक जीवन का भरपूर प्रयोग किया गया है। उनकी उपलब्धि इस बात में है कि उन्होंने अपने गाँधी विषयक विजन को सजीव बिम्ब में बदल दिया है। उपन्यास का गाँधी इतिहास का गाँधी होते हुए भी गिरिराज के विजन का गाँधी है। वह एक ऐसा व्यक्ति है जो पहला गिरमिटिया है। उपन्यासकार की दृष्टि में गाँधीजी के राजनीतिक व्यक्तित्व से अधिक उनका निजी व्यक्तित्व है। जो उनके परिवार और परिजनों के संदर्भ में उभरता है। महात्मा गाँधी का सम्पूर्ण जीवन मानवता को समर्पित था। उन्होंने अपने पूरे परिवार को अपने स्व का अभिन्न अंग मान लिया था। गाँधीजी की पत्नी कस्तूरबा और बच्चों को न चाहकर भी उनके महायज्ञ की समिधा बनना पड़ा। इस उपन्यास में लेखक गिरिराज किशोर ने कस्तूरबा की पीड़ा तथा पति और पिता के रूप में गाँधीजी की कठोर संवेदना शून्य, अनुशासनात्मक पक्ष का अंकन बड़े सधे हाथों में किया है। दाम्पत्य जीवन के स्वप्नों को संजोती स्त्री के रूप में कस्तूरबा की

पीड़ा और अनुशासन की पीड़ा में बंधे युद्धरत गाँधी का आत्म-संघर्ष बड़ा ही करुण है। इस प्रकार जीवनीपरक उपन्यास में व्यक्ति के आत्म-संघर्ष को भी दिखाया जाता है।

इस परम्परा में अगला नाम वीरेंद्र कुमार जैन का है। उन्होंने वर्धमान महावीर के जीवन पर आधारित चार खण्डों में 'अनुत्तर योगी' (2009) नामक जीवनीपरक उपन्यास की रचना की। भारतीय अध्यात्म दर्शन में जिस प्रकार से गौतम बुद्ध का एक महत्वपूर्ण स्थान है उसी प्रकार से वर्धमान महावीर का भी है। ऐसे व्यक्तित्व को उपन्यास का विषय बनाने में सबसे बड़ी कठिनाई उसे एक सामान्य मनुष्य के रूप में रूपांतरित करने की है जो उपन्यास की प्रमुख शर्त है। दूसरी कठिनाई आध्यात्मिक विचारधाराओं को संतुलित एवं प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करने की है। वीरेंद्रकुमार जैन इन दोनों ही चुनौतियों का औपन्यासिक स्तर पर सामना करने में असमर्थ रहे हैं। वे महावीर के जीवन से जुड़े परम्परागत अलौकिक तथ्यों के साथ समझौता करके ही उनका चरित्र प्रस्तुत करते हैं। इस उपन्यास में महावीर की विचारधाराओं को अधिक महत्व दिया गया है।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 नित्यसत्यानंद अवधूत, प्रगति शिखा, पृष्ठ संख्या 10

2 डॉक्टर रामचंद्र तिवारी, हिंदी का गद्य-साहित्य, पृष्ठ संख्या 194

3 https://www.youtube.com/watch ?v=OmulNcwfEtw&t=876s

4 अमृतलाल नागर, मानस का हंस, पृष्ठ संख्या 11

5 अमृतलाल नागर, मानस का हंस, पृष्ठ संख्या 14

6 अमृतलाल नागर, मानस का हंस, पृष्ठ संख्या 13

7 अमृतलाल नागर, मानस का हंस, पृष्ठ संख्या 15

8 लेखक अमृतलाल नागर, खंजन नयन, पृष्ठ संख्या 18

[9] अमृतलाल नागर, खंजन नयन, पृष्ठ संख्या 1

[10] रांगेय राघव, रत्ना की बात, पृष्ठ संख्या 9

[11] रांगेय राघव, रत्ना की बात, पृष्ठ संख्या 20 और 21

[12] रांगेय राघव, रत्ना की बात, पृष्ठ संख्या 15

[13] रांगेय राघव, रत्ना की बात, पृष्ठ संख्या 19

[14] अमृतलाल नागर, मानस का हंस, पृष्ठ संख्या 15

[15] रांगेय राघव, रत्ना की बात, पृष्ठ संख्या 38

[16] अमृतलाल नागर, मानस का हंस, पृष्ठ संख्या 48

[17] रांगेय राघव, रत्ना की बात नामक उपन्यास, पृष्ठ संख्या 94

[18] डॉ कृष्णबिहारी मिश्र, कल्पतरु की उत्सव लीला, पृष्ठ संख्या 19

[19] गोपाल राय, हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृष्ठ संख्या 456

ii. हिंदी जीवनीपरक उपन्यास का स्वरूप

हिंदी साहित्य के जीवनीपरक उपन्यासों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है, एक 'ऐतिहासिक जीवनीपरक उपन्यास' जैसे लेखक गिरिराज किशोर द्वारा रचित महात्मा गाँधी के जीवन पर आधारित 'पहला गिरमिटिया' तथा दूसरा 'आध्यात्मिक जीवनीपरक उपन्यास' जैसे डॉ कृष्णबिहारी मिश्र द्वारा लिखित श्री रामकृष्ण के जीवन पर आधारित 'कल्पतरु की उत्सव लीला'।

i. ऐतिहासिक स्वरूप :

हिंदी के प्रख्यात साहित्यकार भारतेंदु हरिश्चंद्र के जीवन को आधार बनाकर लेखक रांगेय राघव द्वारा लिखित 'भारती का सपूत' नामक उपन्यास को ऐतिहासिक जीवनीपरक उपन्यास के अंतर्गत लिया जा सकता है। साहित्य एक समावेशी विधा होने के कारण इसके रचयीता अपनी विचारधाराओं को पाठकों के समक्ष पहुँचाने के लिए विभिन्न विधाओं का सहारा लेते हैं। जीवनी केंद्रित उपन्यासों की रचना मानव जीवन को आधार बनाकर किया जाता है और ऐसे उपन्यासों की सारी घटनाएँ और पात्र वास्तविक होते हैं। इनमें काल्पनिकता की कोई जगह नहीं होती। उदाहरण हेतु लेखक नरेंद्र कोहली द्वारा लिखित स्वामी विवेकानंद के जीवन पर आधारित छः खंडों में लिखा गया उपन्यास "तोड़ो कारा तोड़ो के पात्र वास्तविक हैं। चाहे वे स्वामी विवेकानंद हों, भुवनेश्वरी हों, भूपेन्द्र हों, महेंद्र हों, विश्वनाथ दत्त हों, राजा अजितसिंह हों, हरिपद मित्र हों, रामकृष्ण परमहंस हों, अखंडानंद हों, तूरियानंद हों, माँ शारदा हों, श्रीमती लेयन हों, ज्योसोफीन हों, एडवर्ड टोरोंटो स्टर्डी हों, श्रीमती मूलर हों सभी पात्र वास्तविक हैं। इतना ही नहीं अन्य सभी पात्र वास्तविक हैं। जिन स्थानों का वर्णन इस उपन्यास के छः खंडों में आया है चाहे वह कलकत्ता हो, राजपूताना हो, दिल्ली हो, रामनाड हो, लंदन हो, तिरुवनंतपुरम हो इनमें से कोई भी स्थान काल्पनिक नहीं है। अन्य जीवनी केंद्रित उपन्यासों की भी यहीं स्थिति है। अर्थात् जीवनीपरक उपन्यासों में वास्तविक घटनाओं का वर्णन होता है। इस तरह से कोई व्यक्ति जब अपने जीवन के कर्म के फलस्वरूप किसी अन्य इंसान के जीवन या किसी स्थान के

इतिहास को प्रभावित करता है तभी उस व्यक्ति के जीवन पर आधारित उपन्यास में उस समय का ऐतिहासिक स्वरूप उभरकर आता है।

गिरिराज किशोर का पहला गिरमिटिया उपन्यास गाँधीजी के जीवन पर आधारित है एवं इसमें गाँधी के सामान्य मानव से महात्मा बनने तक की कथा है। इस उपन्यास में यह दर्शाया गया है कि किसी मानव के जीवन का विकास कई स्तरों पर सम्पन्न होता है। इसमें लेखक ने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि गाँधी किस प्रकार से एक सामान्य मानव से अंत तक आते-आते एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व बन जाते हैं। लेखक ने अपने उपन्यास का नायक महात्मा गाँधी को नहीं बल्कि मोहनदास नामक एक आम आदमी को बनाया है। एक सामान्य व्यक्ति जिस प्रकार से अपनी रोजी रोटी की तलाश में अर्थात् आजीविका की तलाश में अपने गाँव-घर, शहर या नगर आदि छोड़कर दूसरे नगरों, शहरों या कभी-कभी दूसरे देशों में जाता है तथा अपनी आजीविका कमाता है वैसे ही गाँधीजी भी अपनी आजीविका की तलाश में ही दक्षिण अफ़्रीका गए। इस उपन्यास के लेखक गिरिराज किशोर की मान्यता है कि गाँधीजी स्वयं एक गिरमिटिया की भाँति ही दक्षिण अफ़्रीका गए थे। वे यह भी बताते हैं कि गाँधीजी केवल गिरमिटिया ही नहीं थे बल्कि एक अच्छे वकील भी थे। अर्थात् उनमें गिरमिटिया मज़दूर के गुण और वकील का ज्ञान दोनों ही विद्यमान था। लेखक की मान्यता है कि जिस प्रकार से प्रत्येक मनुष्य के जीवन में विविध पक्ष होते हैं उसी प्रकार से गाँधी के जीवन के भी विविध पक्ष देखने को मिलते हैं। गाँधीजी के जीवन से सम्बंधित विविध पक्षों का उल्लेख करते हुए लेखक का यह कहना है कि उनके जीवन में मुख्य रूप से तीन पक्ष हैं पहला मोहनिया पक्ष, दूसरा मोहनदास पक्ष और तीसरा महात्मा गाँधी पक्ष। किसी भी मानव के जीवन के विकास की बात की जाए तो इस प्रकार का विभाजन प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में देखने को मिलता है। यहाँ पर लेखक की अवधारणा को एक उदाहरण के माध्यम से समझा जा सकता है जैसे श्री कृष्ण के जीवन के भी विविध पक्ष हैं। लेखक ने जैसा कि कहा है कि गाँधीजी के जीवन का विविध पक्ष दिखाई देता है। बैरिस्टरी से लेकर दक्षिण अफ़्रीका से लौटने तक उनके जीवन का जो प्रसंग है वह मोहनदास पक्ष है। लेखक गिरिराज किशोर ने गाँधीजी के जीवन के इसी पक्ष को अपने उपन्यास की कथा का माध्यम बनाया है। दक्षिण अफ़्रीका में बैरिस्टर के रूप में बापू का जीवन काफ़ी

संघर्षपूर्ण रहा है। गाँधीजी के जीवन की इस संघर्ष गाथा को दर्शाना लेखक का कहीं न कहीं उद्देश्य रहा है। गाँधीजी जब दक्षिण अफ़्रीका गए तब वहाँ उन्होंने भारतीय लोगों पर अंग्रेजों के द्वारा हो रहे अत्याचार का साक्षात्कार किया। वहाँ रहते हुए उन्हें स्वयं भी तमाम सारे संकटों से गुज़रना पड़ा। इन्हीं कारणों के परिणाम स्वरूप उनके मन में अपने देशवासियों और वहाँ मौजूद तमाम सारे अश्वेत लोगों के प्रति हो रहे अत्याचारों के ख़िलाफ़ उनके संवेदनशील मानस में क्रांति की भावना जाग उठी थी। यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि उनकी यह क्रांति हिंसापरक नहीं थी बल्कि यह अहिंसापरक थी। जिस सत्य और अहिंसा की नीति का उन्होंने भारत के स्वाधीनता की लड़ाई में प्रयोग किया उसकी पृष्ठभूमि का निर्माण उन्होंने दक्षिण अफ़्रीका में ही कर लिया था।

रांगेय राघव द्वारा लिखित भारतेंदु के जीवन पर आधारित 'भारती का सपूत' भी एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इस उपन्यास में भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा रचित साहित्यिक कृतियों की जानकारी दी गई है। उदाहरण हेतु लेखक के द्वारा भारतेंदु द्वारा 1876 में कवि राजशेखर कृत 'कर्पूर मंजरी के अनुवाद की जानकारी दी गई है। भारतेंदुजी द्वारा रचित 'भारत दुर्दशा' नाटक का उल्लेख किया है। लेखक ने सन 1877 में भारतेंदु के द्वारा की गई यात्रा का वर्णन किया है तथा लौटने के बाद हिंदी-वर्द्धिनी सभा के आमंत्रण में प्रयाग में उन्होंने एक ऐतिहासिक भाषण दिया था कि अपनी भाषा की उन्नति में ही सब उन्नतियों का मूल है। इस उपन्यास में लेखक ने भारतेंदु द्वारा स्त्रियों के लिए सम्पादित बाल-बोधिनी पत्र का भी उल्लेख किया है। भारतेंदुजी ने इस पत्र की शुरुआत सन 1874 में की थी। इस उपन्यास में भारतेंदु के समय में प्रचलित बाल-विवाह के विषय में भी बताया गया है।

ii. आध्यात्मिक स्वरूप :

लेखक डॉ० कृष्णबिहारी मिश्र विरचित श्री रामकृष्ण के जीवन पर आधारित उपन्यास 'कल्पतरु की उत्सव लीला' के आधार पर सम्प्रदाय सहिष्णुता एवं दैवी विभूति श्री रामकृष्ण के व्यक्तित्व में मूर्त हुई थी। अपनी साधना के क्षेत्र में उन्हें जिन-जिन कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा था इसकी जानकारी वे मास्टर महेंद्रनाथ गुप्त को देते हैं और ऐसी कठिन परिस्थियों में वे बामुनी माँ जो उन्हें अपने साधना के क्षेत्र में निरंतर

प्रगति करने के लिए सदैव सहायता प्रदान करती रही है। एक कठिन परिस्थिति का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं कि “उन्हीं दोनों आसनों पर मुझे बैठाकर बामुनी माँ का आदेश मुझसे पूरा करने के लिए जटिल मुद्रा में जोत देती थी। महीनों वह असहज चर्चा चलती रही। बामुनी स्वयं दूर-दूर बीहड़ क्षेत्र में भटकते अपनी विकट पूजा के लिए विहित दुष्प्राप्य पूजन सामग्री ढूँढती रहती। बामुनी का तप देखकर मैं चकित रह गया। जानता है मास्टर, मेरे भीतर संस्कार रूप में जमी मैल और घृणा भाव के उच्छेद के लिए भैरवी का रूप धरकर माँ ने कैसे-कैसे नाच नहीं नचाए। एक दिन शव की खोपड़ी में मछली पकाकर भैरवी ने जगदम्बा को निवेदित किया। फिर उसी प्रकार जगदम्बा को भोग लगाकर उस प्रसाद को मुझे ग्रहण करने को कहा। एक बार ठमका जरूर, पर माँ का आदेश था, सो बामुनी के निर्देश को पालन करने को बाध्य था। उस दिन तो घीन नहीं जागी। पर दूसरे दिन नर-मांस का सड़ा हुआ टुकड़ा लाकर पहले जगदम्बा को अर्पित किया और फिर मुझे वैसा ही कर माँ के प्रसाद के रूप में ग्रहण करने को कहा। लेकिन मैं तो गहरी घृणा से काँप गया। साहस बटोर कर बोला ऐसा मुझसे नहीं होगा। मेरा संकोच तोड़ते हुए भैरवी ने अपनी जीभ पर उसका एक अंश रखते हुए निर्देश दिया कि घृणा नहीं करनी चाहिए बाबा, मैं तो श्रद्धापूर्वक माँ का प्रसाद ग्रहण कर रही हूँ। और बामुनी का वह नाटक देखते ही मैं भावाविष्ट हो गया मास्टर”![1]..

लेखक अमृतलाल नागर के द्वारा लिखित 'मानस का हंस' और 'खंजन नयन' जोकि तुलसी और सूर के जीवन को केंद्र में रखकर लिपिबद्ध किया गया है। लेखक रांगेय राघव द्वारा लिखित 'रत्ना की बात' जो गोस्वामी तुलसीदास के जीवन को आधार बनाकर लिखा गया है। इन समस्त उपन्यासों को आध्यात्मिक जीवनीपरक उपन्यासों की श्रेणी में आते हैं। क्योंकि वे आध्यात्मिक व्यक्तित्व हैं। रांगेय राघव विरचित उपन्यास ‘लोई का ताना’ जिसे कबीरदास के जीवन को आधार बनाकर लिखा गया है। यह आध्यात्मिक जीवनीपरक उपन्यास है।

रांगेय राघव द्वारा लिखित भगवान श्री कृष्ण के जीवन को आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास 'देवकी का बेटा' में लेखक रांगेय राघव ने भगवान श्री कृष्ण के जीवन में घटने वाली अनेकों घटनाओं की वैज्ञानिक व्याख्या की है। उन्होंने भगवान श्री कृष्ण को एक महान युगपुरुष और कर्मठ व्यक्ति के रूप में दर्शाया है। उनके उपन्यास में श्री कृष्ण जीवन को एक मोड़ प्रदान करने वाले एक सामान्य मानव के रूप में पाठकों के सामने उभरकर आते हैं। समय के धुँधलके से गुज़रते हुए एक ऐतिहासिक पुरुष के रूप में श्री कृष्ण का चित्रण किया गया है। आलोच्य उपन्यास में योगेश्वर श्री कृष्ण का चित्रण एक सामान्य मानव के रूप में लेखक ने दर्शाया है। इस उपन्यास में यह बताया गया है कि जिस प्रकार कृष्ण ने अपनी बाँसुरी के माध्यम से इस सम्पूर्ण ब्रजमंडल में प्राणों का संचार किया था। एकता और आपसी भाईचारे का निर्माण किया था। ठीक उसी प्रकार से अब उन्हें इस देश के अत्याचारी शासकों का सामना करना चाहिए। कृष्ण को यहाँ पर बाँसुरी बजाकर इस संसार में प्राण संचार करने वाला बताया गया है। अतः जिस व्यक्ति ने बाँसुरी के माध्यम से इस संसार में मानव जीवन में प्राणों का संचार किया है वहीँ व्यक्ति कंस और जरासंध जैसे दुष्टों का बाँसुरी बजाकर संहार भी कर सकता है। यहाँ लेखक ने भगवान श्री कृष्ण के दिव्य स्वरुप को दर्शाने का प्रयास किया है। जहाँ तक इस सम्पूर्ण सृष्टि में प्राण प्रतिष्ठा की बात है यह कार्य भगवान के अतिरिक्त कोई सामान्य व्यक्ति नहीं कर सकता है।

रांगेय राघव द्वारा रचित 'लोई का ताना' भी हिंदी का आध्यात्मिक जीवनीपरक उपन्यास है। इस उपन्यास को कबीरदास के जीवन को केंद्र में रखकर लिपिबद्ध किया गया है। लोई का ताना एक ऐसा उपन्यास है जिसमें कबीर की जीवनी को केंद्र में रखकर उस युग की विद्रोहात्मक प्रवृत्ति को दर्शाया गया है। कबीर के जीवन सम्बंधी साक्ष्य अधिक नहीं मिल पाते हैं। फिर भी जो भी साक्ष्य मिलते हैं उन्हीं को आधार बनाकर लेखक ने कबीर की जीवनी का सृजन किया है। इस उपन्यास में संत कबीर ने आध्यात्मिकता के मार्ग के विभिन्न पड़ावों का चाहे सगुण ब्रह्म हो, निर्गुण, सूफ़ियों और वैष्णवों के मतों का भी उन्होंने अनुसरण किया है। कबीर के यहाँ जिस प्रेम तत्व का दर्शन मिलता है वह उन्होंने मध्यकालीन सूफ़ी संतों की विचारधाराओं से ही प्राप्त किया था। कबीर नाथपंथी साधक थे। कबीरदास के यहाँ नाथों का साधनात्मक रहस्यवाद और सूफ़ियों का भावनात्मक

रहस्यवाद दोनों का दर्शन होता है। कबीर के जीवन में भावनात्मक रहस्यवाद और साधनात्मक रहस्यवाद दोनों का ही सामंजस्य देखने को मिलता है। इस उपन्यास में लेखक की मान्यता है कि एक समय ऐसा था जब वे सगुण ईश्वर को मानते थे। कबीरदासजी का जन्म एक विधवा ब्राह्मणी की कोख से हुआ था। रांगेय राघवजी के उपन्यास में वर्णन आता है कि कबीर निम्नवर्गीय हिंदू बनकर ही अपने जीवन का संचालन करना चाहते थे। परंतु गुरु रामानन्द से दीक्षा लेने के उपरांत यह सम्भव नहीं था क्योंकि तब वे समाज में प्रचलित जाति-प्रथा की विचारधाराओं से अनेक ऊँचे स्तर पर जा चुके थे है। अतः हिंदू समाज में ब्राह्मणवादी विचारधारा को उन्होंने स्वीकार नहीं किया। एक समय ऐसा आया जब कबीर सगुण ईश्वर को मानकर ब्राह्मणवाद के नियमों से स्वयं को जोड़ नहीं सके थे। उन्होंने एक जुलाहे की भाँति मानव जीवन को देखने का प्रयास किया था। मुसलमानों और हिंदुओं में प्रचलित कुरितियों का विरोध करते हुए भी वे दोनों ही धर्मों के प्रति गहरी आस्था और श्रद्धा रखते थे। उन्हें न हिंदुओं से किसी प्रकार का कोई विरोध था और न ही मुसलमानों से बल्कि दोनों ही धर्मों के बाह्य आडंबरों के वे विरोधी थे। कबीर का समयकाल एक ऐसा समयकाल था जिस समय भारत में मुसलमानों का शासन चल रहा था और उस समय मुसलमानों की शक्ति भी बढ़ गई थी और सारी भारतीय जातियों का संगठन हो रहा था। कबीर के अनुसार ईश्वर रहस्य इसीलिए है क्योंकि मनुष्य अपनी सीमित बुद्धि के माध्यम से परम तत्व को नहीं जान सकता। उस समय निम्न जाति के बहुत से लोग कबीर के शिष्य बन चुके थे। कबीर ने अपने समय में भारतीय सांस्कृतिक जागरण की निम्ब रखी थी। क्योंकि देश के नव निर्माण के क्षेत्र में देश की संस्कृति की भूमिका होती है। उस समय शासन मुसलमानों का था और मुसलमान अत्याचार भी किया करते थे। परिणाम स्वरूप कबीर का पंथ कहीं न कहीं हिंदू पंथ ही बन चुका था। कबीर क्रांतिकारी भी थे। उदाहरण हेतु उनकी भाषा को देखी जा सकती है। जहाँ तक कबीर की भाषा की बात है उन्होंने अपनी बात जनभाषा में रखी थी। कदाचित यहीं कारण है कि आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजी ने उन्हें वाणी का डिकटेटर कहा है। ऐसी बात नहीं है कि केवल कबीर ने ही जनता के बीच में अपनी विचारधाराओं की अभिव्यक्ति के लिए जन-भाषा का प्रयोग किया बल्कि जन-भाषा का प्रयोग तुलसी ने भी किया था। परंतु जन-भाषा के साथ-साथ तुलसी

जहाँ संस्कृत भाषा के समर्थक थे वहाँ कबीर संस्कृत भाषा के समर्थक नहीं थे। उनकी मान्यता थी कि संस्कृत भाषा तो कूप जल के समान है जिसकी समझ केवल समाज के उच्च वर्ग तक सीमित है जिससे जल की प्राप्ति के लिए जिस बालटी की ज़रूरत है वह समाज के निम्न वर्ग के लोगों के पास उपलब्ध नहीं है। और जहाँ तक भाखा अर्थात् जनभाषा की बात है वह तो बहता हुआ पानी के समान है। जिस पर आम जनता बड़ी ही सहजतापूर्वक अपना अधिकार स्थापित कर सकती है। भाखा वे लोक भाषाएँ हैं जिनमें देश की आम जनता बातचीत करती है। अतः जब बात किसी साधक की आम जनता को उपदेश देने की आती है तो उन्हें आम जनता की भाषा में ही आध्यात्मिक ज्ञान का वितरण करना उचित है। कबीर ने जनता के बीच में आध्यात्मिक चिंतन के प्रचार के लिए समाज की आम जनता के बीच से ही उपमानों को ग्रहण किया था। कबीर के अनुसार मोह, लोभ और अहंकार ही समाज में अनाचार के मुख्य कारण हैं।

रांगेय राघव द्वारा रचित एक और उपन्यास है 'यशोधरा जीत गई'। यह उपन्यास गौतम बुद्ध के जीवन पर आधारित है। बुद्ध के समय में राजनीतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का विघटन शुरू हो चुका था। आलोच्य उपन्यास में लेखक रांगेय राघव ने यह दर्शाया है कि गौतम बुद्ध के बुद्धत्व के निर्माण में उनकी पत्नी यशोधरा की भूमिका है। लेखक की मान्यता है कि गौतम बुद्ध का जीवन त्रिपिटकों में बिखरा हुआ है। गौतम बुद्ध को लेकर अब तक लोगों की साम्प्रदायिक अवधारणा रही है। प्राचीन भारत के धार्मिक इतिहास में भारतीय समाज में अनेकों धार्मिक सम्प्रदाय थे। प्राचीन भारत के इतिहास के निर्माण में विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों जैसे बौद्ध सम्प्रदाय, जैन सम्प्रदाय, वैष्णव सम्प्रदाय, वैदिक संप्रदाय आदि की भूमिका है। गौतम बुद्ध केवल त्रिपिटक की ही बात नहीं करते बल्कि वेद, पुराण, उपनिषद आदि की बात भी करते हैं। लेखक ने अपने उपन्यास के पात्र गौतम बुद्ध को किसी भी प्रकार के चमत्कारों से दूर रखा है क्योंकि लेखक की मान्यता है कि चमत्कार व्यक्ति के चरित्र की महानता को गिराते हैं। बुद्ध के जीवन का चित्रण करते हुए उस समय की जो राजनीतिक परिस्थिति थी उस पर भी लेखक ने प्रकाश डाला है। गौतम बुद्ध के ज़माने का भारतीय जीवन विषम परिस्थितियों की चपेट में आ चुका था। राजनीति का प्रभाव मनुष्य के जीवन पर पड़ता है। तत्कालीन समाज में दास-प्रथा प्रचलित

थी। भारत की शासन की बागडोर जिस जाति या जिस समाज के हाथों में था अर्थात् भारत का क्षत्रिय समाज इस प्रथा से जुड़ा हुआ था। उस समय के मानव जीवन में सामंत-प्रथा भी प्रचलित थी। भारतीय चिंतन परम्परा में गौतम बुद्ध की चिंतन प्रक्रिया का व्यापक प्रभाव देखने को मिलता है। रांगेय राघव ने गौतम बुद्ध का चित्रण एक मानव के रूप में किया है। व्यक्ति जिस युग में जीता है वह उस युग की परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता। परिणाम स्वरूप गौतम बुद्ध के जीवन की दुर्बलताएँ उस युग की मानवीय दुर्बलताएँ हैं जिस युग में वे स्वयं जीवित थे। जब वे निरंजना नदी के तट पर ज्ञान प्राप्त करने हेतु पहुँचे ही थे तब कोई उन्हें बार-बार लौटने की बात कह रहा था। इसका मतलब यह है कि मनुष्य जब भी कोई अच्छा कार्य करना चाहता है तो मानवीय मन की दुर्बलताएँ उसे अपने जीवन की वास्तविक प्रगति के लक्ष्य को प्राप्त करने में रोक लेती हैं। यही कारा है परंतु बुद्धिमान मानव इन काराओं को तोड़ने हेतु निरंतर संघर्ष करता हुआ दिखाई देता है। संघर्षरत रहते हुए व्यक्ति के जीवन में एक ऐसा दौर आता है जब वह अपने जीवन में सफल होता है। गौतम बुद्ध के मन में संसार के असीमित कष्टों को देखकर असीम वेदना झलक रही थी। उनके मन में एक जिज्ञासा भी थी कि व्यक्ति इतने कष्ट में क्यों हैं। बौद्ध धर्म की बात करते हुए वे कहते हैं कि 'इस संसार में दुःख है, दुःख का कारण है। मनुष्य को उस दुःख से मुक्त होने का प्रयास करना चाहिए और उसके उपाय भी हैं'। एक सामान्य मनुष्य की भाँति गौतम बुद्ध का मन उन्हें एक वास्तविक मनुष्य बनने के लक्ष्य से दूर ले जा रहा था उससे बचने हेतु लक्ष्य के मार्ग पर बढ़ते हुए इतनी दूर आकर अब लक्ष्य न प्राप्त करते हुए लौट जाना अनुचित है। अतः वे लौटकर अपने आवास की ओर नहीं गए। इस उपन्यास में गौतम बुद्ध के चरित्र के द्वारा यहीं दर्शाया गया है कि अगर जीवन में किसी महत्वपूर्ण लक्ष्य जो सद लक्ष्य है उसे प्राप्त करना है तो लक्ष्य को अर्जित किए बिना पीछे कभी नहीं हटना चाहिए बल्कि उसी की प्राप्ति में निरंतर गतिशील रहना चाहिए। बुद्ध के मन में यह विचार आया कि अब अपने कर्म-क्षेत्र से लौट जाना उनके लिए सम्भव नहीं है।

हिंदी के रीतिकालीन कवि बिहारीलाल के जीवन पर आधारित उपन्यास 'मेरी भव बाधा हरो' को भी जीवनीपरक उपन्यास की कड़ी में जोड़ा जा सकता है। इस उपन्यास में कवि बिहारी की सम्पूर्ण जीवन गाथा का वर्णन किया गया है। रीतिकाल हिंदी साहित्य का

एक ऐसा काल है जिसमें हिंदी प्रदेश की राजसत्ता सम्पूर्ण रूप से विलास के सागर में डूबी हुई थी। नारियाँ राजाओं के लिए केवल भोग की सामग्री बन कर रह गईं थीं। डॉक्टर रामविलास शर्मा रीतिकाल का मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं कि 'रीतिकाल' दरबारी संस्कृति का प्रतिफलन है'। इस उपन्यास में कविवर बिहारी ने आमेर आदि क्षेत्रों के राजाओं को भोग-विलास का जीवन परित्याग कर अपने मूल कर्तव्य शासन-व्यवस्था एवं प्रजा के सुख-दुःख की ओर ध्यान देने की बात कही है। बिहारी राजा जयसिंह के भी दरबारी कवि थे उन्होंने उन्हें भी अपने एक प्रसिद्ध दोहे के माध्यम से राजधर्म के प्रति सचेत किया था क्योंकि राजा जयसिंह अपना राज कार्य छोड़कर अपनी नवविवाहिता पत्नी के प्रति बहुत आकर्षित हो चुके थे। तब कहा जाता है कि कवि बिहारीलाल ने एक प्रसिद्ध दोहा लिखकर उन्हें अपने मूल कर्तव्य की ओर सचेत किया। यह दोहा इस प्रकार है

'नाहि पराग नाहि मधुर मधु, नाहि विकास यहिं काल।
अली कलि सौं बंध्यों आगे कौन हवाल'।।

इस दोहे को देखने के उपरांत राजा जयसिंह काफ़ी लज्जित हुए थे और अपने राजधर्म के प्रति सचेत हुए थे।

मैथिल कोकिल विद्यापति के जीवन पर आधारित लेखक रांगेय राघव विरचित "लखिमा की आँखें" उपन्यास को इस परम्परा में जोड़ा जा सकता है। कवि विद्यापति हिंदी साहित्य के एक ऐसे कवि हैं जो आदिकाल और भक्तिकाल के संक्रान्ति काल के कवि कहलाते हैं। आलोच्य उपन्यास में लेखक रांगेय राघव ने विद्यापति के कवि रूप को साकार करते हुए उनके द्वारा रचित रचनाओं का परिचय दिया है। यह भी विदित होता है कि कवि विद्यापति संस्कृत और मैथली भाषा के एक प्रकाण्ड पण्डित थे। लेखक ने यह भी बताया है कि विद्यापति एक आध्यात्मिक साहित्यकार हैं उन्होंने भगवान श्री कृष्ण को लेकर अनेक भक्ति सम्बंधित रचनाओं का सृजन किया है। लेखक रांगेय राघव ने विद्यापति को एक साहित्यकार विद्यापति के रूप में दर्शाने का प्रयास किया है। लेखक ने आलोच्य उपन्यास में कवि विद्यापति के समय की राजनीतिक परिस्थिति पर भी प्रकाश डालने का प्रयास किया है क्योंकि साहित्यकार भी समाज का ही व्यक्ति है, परिणाम स्वरूप राजनीतिक गतिविधियों से समाज के प्रभावित होने के कारण समाज से कवि का जुड़ाव होने के

फलस्वरूप कवि का जीवन भी प्रभावित होता है। परिणाम स्वरूप राजनीति का कुछ हद तक प्रभाव विद्यापति के जीवन में भी देखने को मिलता है। कवि विद्यापति एक ओर जहाँ आध्यात्मिक रचनाकार हैं वहीं दूसरी ओर वे वीर रस और ओज गुण के रचनाकार भी हैं। उदाहरण हेतु उन्होंने "दुर्गाभक्तितरंगिणी और "शिवसर्वस्वसार"नामक ग्रंथों का सृजन किया। "पुराण संग्रह सार" में पुराणों के महत्व को दर्शाने का प्रयास किया है। वहीं दूसरी ओर उन्होंने अवहठ भाषा में "कीर्ति पताका" और "कीर्ति लता" में महाराज कीर्ति सिंह के युद्धों और उनकी वीरताओं तथा उनके राज्याभिषेक का वर्णन किया है। विद्यापति शिव सिंह, कीर्ति सिंह आदि राजाओं के दरबारी कवि भी रहे थे। परिणाम स्वरुप उन्हें राजा की प्रशस्तियों का गुणगान करना पड़ा था। विद्यापति एक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे। जिन्हें श्रृंगारिकता, आध्यात्मिकता और वीरता आदि भावों की बड़ी ही गहरी जानकारी थी। अब अगर यह देखा जाए कि विद्यापति ने राजाओं की वीरता का वर्णन क्यों किया ? इसका एक कारण तो यह है कि वे राजदरबारों से जुड़े हुए थे कहा जाता है कि उन्होंने बड़ी लम्बी आयु प्राप्त की थी और कई राजाओं के राजदरबारों में एक राजकवि के पद पर प्रतिष्ठित थे। एक दूसरा कारण यह है कि विद्यापति के समय में भारत में मुस्लिम शासकों का आक्रमण हो रहा था। उस समय हिंदुओं को ज़बरदस्ती इस्लाम धर्म में धर्मान्तरित किया जाने लगा था। परिणाम स्वरूप साहित्य के माध्यम से हिंदू राजाओं की कीर्ति गाथाओं का वर्णन देश की रक्षा के लिए आवश्यक था क्योंकि इस प्रकार के वर्णनों से देश के राजा-महाराजाओं को अपनी वीरता का अहसास होता है। उन्हें शत्रुओं से लड़ने की प्रेरणा मिलती है। एक बात और वह यह कि साहित्य का जुड़ाव मानव जीवन से है। अतः समाज में मानव जीवन में हो रही विभिन्न प्रकार की गतिविधियों का वर्णन अगर साहित्य में नहीं होगा तो और कहाँ होगा ? साहित्य मनुष्य के जीवन को गतिशीलता प्रदान कर सकता है, अतः समाज में जो घट रहा है उसका यथोचित वर्णन अगर साहित्य में नहीं होगा तो और कहाँ होगा ? अपने यथोचित वर्णन के माध्यम से ही साहित्य समाज की गतिशीलता के साथ चलने में सक्षमता अर्जित कर पाता है। अपनी रचनाओं के माध्यम से सम्पूर्ण मानव समाज

में अमर जागृति फैलाना ही साहित्यकार का मुख्य उद्देश्य होता है। विद्यापति भी अपने समकालीन समाज में जागृति फैला रहे थे। अपनी रचनाओं के माध्यम से एक ओर जहाँ उन्होंने हिंदू समाज में मनाए जाने वाले पर्वों के माध्यम से अपनी मातृभूमि भारतवर्ष की महान सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है वहीं देश के राजाओं की वीरता का वर्णन करते हुए भारत का परिचय एक वीर राष्ट्र के रूप में किया है।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 डॉ कृष्णबिहारी मिश्र, कल्पतरु की उत्सवलीला, पृष्ठ संख्या 79, 81

iii. जीवनीपरक उपन्यास और अध्यात्म

आध्यात्मिक प्रसंगों के वर्णन से ही उपन्यासकार किसी पात्र को उपन्यास के माध्यम से आध्यात्मिक पुरुष बनाता है। इस उपअध्याय में आध्यात्मिक साधकों को आधार बनाकर हिंदी साहित्य में लिखे गए उपन्यासों पर चर्चा की गई है।

ईश्वर अनंत हैं और उनके स्वरूप भी अनंत हैं। जिस साधक को ईश्वर का अनुभव जिस रूप में प्राप्त हुआ उन्होंने ईश्वर के स्वरूप का वैसा ही वर्णन किया है। यहाँ गंतव्य स्थल एक ही है लेकिन वहाँ तक पहुँचने के मार्ग अलग-अलग हैं। जिसे जो मार्ग सहज प्रतीत हुआ उसने उसी मार्ग का अनुसरण किया। अतः एक ओर जहाँ सूरदास के लिए भगवान श्री कृष्ण परमब्रह्म स्वरूप हैं वहीं दूसरी ओर तुलसीदास के लिए दशरथनंदन श्री रामचंद्रजी परमब्रह्म स्वरूप हैं। यहीं कारण है कि तुलसीदास कहते हैं कि 'मुझे इस बात की जानकारी है कि जानकीनाथ में एवं रंगनाथ में कोई भेद नहीं है फिर भी मैं जानकीनाथ को ही अपना सर्वस्व मानता हूँ'। तुलसी ने राम के रूप में ही ईश्वर का साक्षात्कार किया है। एक और जहाँ श्री रामकृष्ण काली को ही सर्वस्व मानते हैं क्योंकि उन्होंने उसी रूप में ईश्वर का साक्षात्कार किया है। वहीं दूसरी और कबीर निर्गुण ब्रह्म को महत्व देते हैं। इस प्रकार विभिन्न साधक अपनी-अपनी अनुभूतियों के आधार पर ही भगवान के स्वरूपों का वर्णन करते हैं। कहा जाता है कि जिसके मन की भावना जिस प्रकार की होती है वह वैसा ही ईश्वर की मूर्ति का दर्शन करता है। उदाहरण के लिए सूरदासजी ने भगवान श्री कृष्ण को अपने सखा के रूप देखा था। अतः उनकी भक्ति सख्य भाव की भक्ति कहलाई। वहीं दूसरी ओर उसी कृष्ण के सम्बंध में मीराबाई की भक्ति माधुर्य भक्ति है क्योंकि मीरा ने कृष्ण की भक्ति अपने स्वामी के रूप में किया था। मीरा ने तो कहा ही है कि 'मेरे तो गिरिधर गोपाल

दूसरों न कोई
जाके सर मोर मुकुट
मेरो पति सोई'।

श्री राम के प्रति तुलसीदास की भक्ति दास्य भाव की है। तुलसी स्वयं को रामचंद्रजी का सेवक ही मानते थे। इस प्रकार एक ही ईश्वर को विभिन्न साधकों ने अपने जीवन में अलग-अलग रूप में देखा है कहा भी गया है कि 'एकं सद विप्र, बहुधा वदंति'।

तुलसीदास के जीवन पर आधारित अमृतलाल नागर विरचित 'मानस का हंस' नामक उपन्यास में लेखक ने गोस्वामी तुलसीदासजी को एक सामान्य मानव के रूप में दर्शाया है। उनके जीवन में निहित आध्यात्मिकता का भी वर्णन किया है। मान्यता है कि किसी भी व्यक्ति के जीवन की अंतिम घड़ी में जो भी भगवान का नाम सुनाता है वह उसका परम मित्र होता है। वह व्यक्ति उसके लिए भगवान स्वरूप ही होता है। आलोच्य उपन्यास में तुलसी रत्ना को भगवान का नाम सुनाने के लिए ही अपने गाँव राजापुर आते हैं। तुलसी का अपनी पत्नी के पास पहुँचने को आध्यात्मिकता के दृष्टिकोण से देखा जा सकता है। रत्ना की अंतिम घड़ी में तुलसीदासजी का आना और भगवान का नाम सुनाना स्वयं भगवान के आगमन के रूप में ही देखा जाना चाहिए। लेखक अमृतलाल नागर लिखते हैं कि "राम-राम कहो रतना ! सीताराम-सीताराम !" ... सीताराम-सीताराम ! बाबा के साथ-साथ मैया के कंठ से भी क्षीण अस्फुट ध्वनि निकली। ....मैया का हाथ अपने हाथ से दबाकर कहा बोलो, बोलो, सीताराम ! सी.... ता..... रा..... म..... एक हिचकी आई और काया निश्चेष्ट हो गई"।[1].. आलोच्य उपन्यास में लेखक अमृतलाल नागर ने श्री रामचंद्र को दीनों पर दया करने वाले ग़रीब नवाज़ भगवान के रूप में दर्शाया है। रत्नावली की मृत्यु के बाद राजापुर नामक गाँव में चारों ओर एक दुखपूर्ण वातावरण व्याप्त हो चुका था। उस अंचल की वे महिलाएँ जिन्होंने अपने जीवन का एक लम्बा समय रत्नावली के साथ बिताया था वे अत्यंत ही संतप्त थीं और विलाप कर रही थीं। इसी समय तुलसी का एक शिष्य 'रामू द्विवेदी' ने अपनी गुरु की लिखी हुई विनयपत्रिका की एक पंक्ति को सस्वर गाना आरंभ किया जो इस प्रकार है

"एसों को उदार जग माँही।

बिन सेवा जो द्रवै दीन पै राम सरिस कोउ नाहीं"।[2]..

गोस्वामी तुलसीदास विरचित विनय पत्रिका की इन पंक्तियों में तुलसी यहीं बताते हैं कि राम दरिद्रों, दुखियों के प्रति करुणाशील हैं। भगवान अपने ग़रीब भक्तों पर अपनी ग़रीब नवाज़ी के लिए उनसे अपनी किसी प्रकार की सेवा की अपेक्षा नहीं करते हैं। रामजी

का अपने भक्तों के प्रति जो प्रेम की भावना है उसमें किसी भी प्रकार का स्वार्थ नहीं है। राम शब्द का रा मात्र सुनते ही तुलसी के मन में राम की महिमा के प्रति श्रद्धा की भावना जाग उठती है और वे भाव-विभोर हो जाते हैं। लेखक के अनुसार "राम शब्द का रा मात्र सुनते ही उनका मुखमंडल खिल उठा। धीरे-धीरे ताली बजाते हुए उन्होंने आँखें मूंद लीं। ध्यान-पट की श्यामता मन की तेजी से सिमटकर बीच में आने लगी। ध्यान-पट अरुण-पीत हो गया। ...."।[3].. यह आध्यात्मिकता की ही निशानी है कि तुलसी जब अपने शिष्य के द्वारा गाए हुए विनयपत्रिका का पद सुनते हैं तो उनका मन आनंदित होकर खिल उठता है। अर्थात् तुलसी को भगवान में ही आनंद दिखाई देता है। उपन्यास के पात्र श्यामो की बुआ ने तुलसी के दो शिष्यों को तुलसी के विषय में जो कुछ कहा था उसे लेखक अमृतलाल नागर ने इन शब्दों में व्यक्त किया है "श्यामो की बुआ बाबा के चरण पकड़कर बैठ गई थीं। वह रोए ही जा रही थी, हठ साध कर अपनी ही कहती चली जा रही थीं। बाबा के दोनों चेलों ने उनसे विनती करनी चाही पर वे और भी चढ़ गईं"।[4].. अर्थात् श्यामो की बुआ को इस बात की जानकारी थी कि तुलसी वास्तव में एक महान आध्यात्मिक पुरुष हैं। अतः वह कहती है कि भौजी के जीवन की अंतिम घड़ी आने के बाद उन्होंने भौजी को आकर दर्शन दिया। न केवल स्वयं दर्शन दिया बल्कि प्रभु श्री रामचंद्र जी का नाम भी सुनाया। श्यामो की बुआ तो यह भी मानती थी कि ऐसी बात नहीं है कि उन्होंने केवल रामजी का नाम ही सुनाया बल्कि नाम सुनाने के साथ-साथ दर्शन भी करवाया था। अर्थात् श्यामो की बुआ के माध्यम से लेखक ने तुलसीदास की आध्यात्मिकता को दर्शाया। इस उपन्यास में लेखक ने पात्र नरहरि बाबा के माध्यम से कहलवाया है कि "जिसके हृदय में राम जी नहीं रहते वही मरे के समान होता है"।[5].. अर्थात् आध्यात्मिक चिंतन कहता है कि मनुष्य का मन ईश्वर चिंतन में लगे होने से ही जीवित है।

बालक रामबोला को प्रभु श्री रामचंद्र के सौंदर्य को समझाते हुए एक ओर जहाँ नरहरिबाबा ने कहा था कि संसार में जितने भी फूल खिलते हैं रामजी उससे भी अधिक सुंदर हैं। वहीं, दूसरी ओर उनका यह भी कहना था कि "सौंदर्य व्यक्त में भी है और अव्यक्त में भी। साकार की सीढ़ियों पर चढ़कर तुम निराकार सौंदर्य को निहार सकोगे"।[6].. अर्थात्

भगवान का कोई भी रूप सुंदर ही होता है। सगुण ईश्वर को जान लेने से निर्गुण को भी जाना जा सकता है। बाबा नरहरिदास बालक रामबोला को आध्यात्मिक संस्कार देने हेतु अयोध्या लेकर जाते हैं वहाँ उनकी भेंट शेष सनातनजी से होती है। वहाँ पर एक ओर जहाँ नरहरिदास ने बालक रामबोला को उपनयन संस्कार करवाया और ब्रह्मगायत्री मंत्र की दीक्षा प्रदान की, वहीं शेष सताजन महाराज ने अक्षर ज्ञान करवाया था। उपनयन संस्कार के विधिवत सम्पन्न होने के उपरांत बालक तुलसी ने लकड़ी से बनी राम की मूर्ति को प्रणाम किया। यह मूर्ति तुलसी मंडप के नीचे थी। जब बालक तुलसी ने राम की मूर्ति को प्रणाम किया तो तुलसी का पत्ता उसके मस्तक से चिपक गया। यह देखकर महंतजी अत्यंत प्रसन्न हुए। उनका कहना था कि "उठ, उठ बच्चा, तेरा कल्याण हो गया। राम जी ने तेरे मस्तक पर भक्ति-भार डाल दिया है"।[7].. श्री रामचंद्रजी की मूर्ति को प्रणाम करते समय मस्तक पर तुलसी का पत्ता गिरना गोस्वामी तुलसीदासजी की गहन आध्यात्मिकता को ही दर्शाती है।

अमृतलाल नागर के द्वारा लिखित 'खंजन नयन' उपन्यास हिंदी के कवि सूरदास के जीवन पर आधारित है। कृष्णभक्त कवि सूरदास की आध्यात्मिकता का एक उदाहरण लेखक अमृतलाल नागर ने इन शब्दों में व्यक्त किया है "बचपन में माँ ने एक बार श्री राधा माधव के विग्रह का परस करवा दिया। वह छुवन अब बिजुली बन गई है। मेरी अनामिका के स्पर्श से वह बिजली मेरी त्रिकुटी में समाती है। हमारे सन्यासी गुरूजी डाँटे कि नहीं सीधे, त्रिकुटी में ध्यान लगाओ। आँखें वालों को सधती होगी, मेरी तो परस बिजुलिया चमके है, उसी से ध्यान सधता है"।[8].. यहाँ पर भक्त सूरदास की गहन भक्ति भावना का परिचय मिलता है। इस बात का भी पता चलता है कि सूरदास के मन में भगवान श्री कृष्ण के प्रति भक्ति की भावना जगाने में उनके परिवार में उनकी माँ की भूमिका रही है। माँ ने ही उन्हें पहली बार मंदिर में ले जाकर श्री राधा माधव से उनका परिचय करवाया था। साथ ही साथ एक गुरु ने उन्हें त्रिकुटी में ध्यान करने के लिए कहा था। उनकी मान्यता है कि बिजलियाँ चमकती हैं और उसी में उनका ध्यान जमता है। बिजली से वे दिव्य ज्योति या ब्रह्म आलोक की और संकेत कर रहे थे। माना जाता है कि ध्यान के माध्यम से ब्रह्मज्योति का दर्शन उच्च

आध्यात्मिकता की निशानी है। ग़ौरतलब है कि सूर अपनी ये बातें एक साधु बाबा या पण्डितजी को बताते हैं। पण्डित जब कहता है कि उसके साथ जाने से वह सूर को त्रिकालज्ञ बना देगा। इतना ही नहीं शुभ तिथि और शुभ स्थल का विचार करते हुए वह बालक सूरदास को दीक्षित भी कर देगा। पण्डित की ऐसी बातों को सुनकर सूरदास ने जो कहा वह भी ध्यान देने लायक बात है। "इस ज्ञान को पाने की उत्कंठा मेरे मन में अब प्रबल हो रही है"।[9].. अर्थात वे ईश्वर भक्ति के लिए व्याकुल थे। सूरदासजी की भक्ति सख्य भाव की भक्ति है। वे भगवान श्री कृष्ण को अपना सखा मानते थे। भगवान ही मनुष्य के वास्तविक सखा हैं इस बात से पहला परिचय सूर को उनकी माँ ने ही करवाया है। लेखक अमृतलाल नागर ने लिखा है कि "माँ ने ही श्याम को सूरज का सखा बनाया था। तब पाँच बरस की उमर थी। तब तक सीही आ चुका था।सूरज खेलने का हट करने पर बाहर के लड़कों से पिटकर आया था। हर तरफ़ से तिरस्कृत बालक का बिलखना देखकर माँ ने कलेजे से चिपटा लिया, फिर आप नहा और बेटे को नहलाकर राधागोपाल के मंदिर में ले गई थी। माँ ने इष्टदेव की मूर्ति पर बच्चे से हाथ फिरवाया। कामधेनु का सहारा लिए राधागोपाल खड़े थे"।[10].. भक्त सूरदास के मानस में भगवान श्री कृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति को जागृत करने में उनकी माँ की अविस्मरणीय भूमिका थी।

तुलसीदास के जीवन पर रांगेय राघव विरचित उपन्यास रत्ना' की बात' में आध्यात्मिकता का वर्णन किया गया है। जब तुलसीदास अपनी वृद्ध अवस्था में बीमार पड़ते हैं और भगवान श्री रामचंद्र का नाम लेते हैं तो उनका एक शिष्य नारायण उनसे पूछता है कि "गुरुदेव ! यह आप क्यों दुहरा रहे हैं" ?[11].. उत्तर में तुलसीदासजी जो कहते हैं यह एक सच्चे भक्त की एकनिष्ठता और एक उच्च आध्यात्मिक स्थिति को दर्शाती है। यह कथन उनकी प्रभु श्री राम के प्रति अनन्य भक्ति का परिचय है। तुलसी कहते हैं कि "बेटा ! जितनी बार नाम मुँह से निकले उतना ही अच्छा है अब उसके सिवाय सुननेवाला है भी कौन" ?[12].. तब नारायण का कहना था कि इतनी बार तो आपने भगवान से प्रार्थना की ही है परंतु कोई लाभ तो नहीं हुआ। अपने शिष्य के मुख से इस प्रकार की बात सुनकर तुलसी जो कहते हैं उस पर ध्यान देने की आवश्यकता है। इससे उनकी प्रभु श्री राम के प्रति

अत्यंत ही गहन आस्था का परिचय प्राप्त होता है। यह कथन इस प्रकार है "राम-राम बेटा ऐसा न कह ! पाप की बात न कर। दीनबंधु के दरबार में पहुँचना सहज नहीं है नारायण"![13].. यानी कि व्यक्ति को जितना भी दुःख हो या कष्ट हो कभी भी ईश्वर को भूलना नहीं चाहिए। भगवान के पास पहुँचने हेतु और उनकी भक्ति प्राप्त करने हेतु अनेक दुःख और कष्ट सहन करने पड़ते हैं। भगवान अपने भक्त को दुःख और कष्ट देकर निरंतर उसकी भक्ति की परीक्षा लेते रहते हैं। उपन्यास का एक पात्र 'चंद्रनाथ' उन्हें एक अवतार के रूप में स्वीकार करता है। अपने पात्र ब्राह्मण चंद्रनाथ से लेखक कहलवाते हैं कि "वह अवतार है भैया अंश है। उसका काम इस कलियुग में भारत भूमि का उद्धार करना था, सो उसने अकेले ही कर दिखाया"।[14].. इन पंक्तियों में वर्णित बातों के आधार पर कहा जा सकता है कि तुलसी एक आध्यात्मिक महापुरुष थे। इस बात का आभास लोगों को हो चुका था। साथ ही साथ इस गद्यांश में यह भी बताया गया है कि इस संसार में महापुरुषों का आगमन सिर्फ़ अकेले की मुक्ति के लिए ही नहीं होता है बल्कि संसार के प्रत्येक मानव के कल्याण के लिए ही उनका आगमन होता है। आलोच्य उपन्यास में बाबा नरहरिदास के द्वारा बालक तुलसीदास को जो कहा गया वह ध्यान देने लायक बात है "योगेश्वर कृष्ण ने कहा है कि हे परंतप ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के तथा शूद्रों के भी कर्म स्वभाव से उत्पन्न हुए गुणों के आधार पर विभक्त किए गए हैं अर्थात् पूर्वकृत कर्मों के संस्कार रूप स्वभाव से उत्पन्न हुए गुणानुसार विभक्त किए गए हैं। यहीं कारण है कि ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण ही है"।[15].. साथ ही साथ भक्त तुलसी को एक पुजारी के द्वारा यह कहलवाना कि भगवान से यह प्रार्थना करो कि "हे अच्युत ! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है। और फिर स्मृति प्राप्त हुई है। अतः मैं संशयरहित हुआ स्थित हूँ और आज्ञा का पालन करूँगा"।[16].. अर्थात्, बालक तुलसी को चाहे उनके गुरु नरहरि बाबा रहे हों अथवा पुजारी रहा हो इस प्रकार आदेश देना कहीं न कहीं तुलसी के भीतर में निहित आध्यात्मिकता ही है। गुरु की कृपा के माध्यम से तुलसी के भीतर आध्यात्मिकता की जागृति हो चुकी थी।

हिंदू आध्यात्मिक दर्शन में अद्वैतवाद का एक महत्वपूर्ण स्थान है। अद्वैतवादी चिंतन का एक उदाहरण रांगेय राघव ने अपने पुस्तक में दर्शाया है। तुलसी जब अपने गुरु

नरहरिदास से पूछते हैं कि शिव और राम में कौन बड़े हैं ? लोगों की मान्यता है कि शिवजी बड़े हैं। अपने शिष्य के इस प्रकार की बात सुनकर बाबा नरहरिदास जो कहते हैं वह इस प्रकार है। "वे दोनों ही भगवान हैं बेटा ! वे तपस्वी के रूप में शिव हैं। और लोकोद्धारक जगत के नायक के रूप में राम हैं"।[17].. हिंदू चिंतन के अनुसार अद्वैतवाद की चिंतनधारा का बड़ा महत्व है। ईश्वर के विभिन्न स्वरूप में कोई भिन्नता नहीं है। ईश्वर के जितने भी स्वरूप हैं चाहे वह भगवान राम का रूप हो या भगवान शिव का। आध्यात्मिक चिंतन कहता है कि भगवान जब मानव कुल को भगवत साधना के महत्व को समझाने के लिए एक तपस्वी का स्वरूप धारण करते हैं तो वे शिव कहलाते हैं। ठीक इसी प्रकार जब वहीं भगवान संसार के पापों से संसार के उद्धार का स्वरूप धारण करते हैं तो वे श्री राम कहलाते हैं। अर्थात् एक ओर जहाँ राम भगवान का लोक मंगल रूप है। वहीं दूसरी शिव रूप यह सीखाता है कि किस प्रकार से एकनिष्ठ तपस्या के माध्यम से मंगलमय श्री भगवान के चरणों में समाहित हुआ जा सकता है। तुलसी को सपने में हनुमानजी के दर्शन हुए हैं और हनुमानजी उन्हें प्रणाम करते हैं। यहाँ ब्राह्मण का एक वास्तविक परिचय मिलता है कि वह पृथ्वी का देवता है। हनुमानजी तुलसी से कहते हैं कि "तुम ब्राह्मण हो तब तो मैं तुम्हें प्रणाम करूँगा। ब्राह्मण पृथ्वी के देवता होते हैं"।[18].. अर्थात् वही व्यक्ति ब्राह्मण है जो ब्रह्मज्ञ है। जिसका मन सम्पूर्ण रूप से ईश्वर में डूबा हुआ है। ठीक इसी प्रकार रांगेय राघव के उपन्यास में हनुमानजी तुलसी से जो कहते हैं कि वे एक ब्राह्मण हैं और ब्राह्मण इस धरती का देवता होता है। इसलिए हनुमान तुलसी को प्रणाम कर रहे हैं। यहाँ हनुमान ने तुलसी को जाति ब्राह्मण के रूप में भी प्रणाम किया और ब्रह्मज्ञ ब्राह्मण के रूप में भी प्रणाम किया। तुलसी का चित्त भगवान श्री राम की भक्ति में डूबा हुआ था। केवल ब्राह्मण कुल में जन्म लेने से ही कोई ब्राह्मण नहीं हो जाता उसका चित्त भी भगवान के चरणों में समाहित होना चाहिए साथ ही साथ उसमें लोक मंगल की भावना निहित होनी चाहिए। गोस्वामी तुलसीदास में दोनों था।

आलोच्य उपन्यास को लेखक ने तुलसी की भार्या रत्नावली को केंद्र में रखकर लिखा है। तुलसी के मानस में आध्यात्मिकता की जागृति में रत्नावली की भूमिका एक गुरु के रूप

में रही है। स्वयं भगवान ने ही रत्नावली के रूप में उनकी पत्नी बनकर उन्हें यह शिक्षा प्रदान किया कि मानव का वास्तविक आकर्षण नर अथवा नारी के प्रति नहीं बल्कि ब्रह्म के प्रति ही होनी चाहिए क्योंकि इस संसार में व्यक्ति का आगमन चाहे वह नारी हो या पुरुष भगवान को प्राप्त करने के लिए ही हुआ है। अंतिम समय में तो भगवान का परम पवित्र नाम ही संसार के प्रत्येक मानव के साथ जाने वाला है। उदाहरण के लिए गोस्वामी तुलसीदास की भार्या उनसे कहती है कि "तुमने मेरे हाड़-चाम से इतना प्रेम किया, इतने अंधे हो गए। अगर इससे आधा भी भगवान से किया होता तो जन्म-जन्मांतर के पाप धुल गए होते"।[19].. भगवान किसी भी रूप में आकर अपने भक्त की भक्ति की परीक्षा ले सकते हैं। जो व्यक्ति अंधकार दूर कर सकता है वहीं गुरु होता है। तुलसी के मन में पनपे अज्ञानरूपी अंधकार के कारण वे अपनी पत्नी से बहुत अधिक आकर्षित हो चुके थे उसे उनकी पत्नी ने ही अपने ज्ञान के द्वारा दूर कर साधक तुलसी को भगवान की भक्ति के लिए आकर्षित किया क्योंकि इसी में तुलसी की भलाई है। अपनी शिक्षा की समाप्ति के उपरांत गुरूजी को दक्षिणा देने की परम्परा है। अतः गोस्वामी तुलसीदास ने भी जब शेष सनातन महाराज को गुरु-दक्षिणा देने की इच्छा प्रकट की तब शेष सनातन महाराज ने जो कहा था वह ध्यान देने लायक बात है।"तू गुरु-दक्षिणा देना चाहता है तो वचन दे। जो शिक्षा मैंने दी है उससे ब्राह्मण की मर्यादा बढ़ाएगा। धन के लिए लोलुप नहीं होगा। तू भगवान रामचंद्र में सदैव अटूट भक्ति और श्रद्धा रखेगा" ?[20].. आलोच्य गद्यांश में एक ब्राह्मण के मूल कर्तव्य के बारे में बताया गया है कि उसका मन सदैव ईश्वर की भक्ति में लीन रहना चाहिए। यहीं ब्राह्मण का मूल कर्तव्य है। साथ ही साथ ब्राह्मण का यह भी परम कर्तव्य है कि जो शिक्षा वह अपने शिक्षण संस्थानों में गुरूजी से प्राप्त करता है उसे समाज में वितरण करे।

हिंदी साहित्य के जीवनीपरक उपन्यासों में श्री रामकृष्ण के जीवन को आधार बनाकर हिंदी के प्रख्यात लेखक डॉ कृष्णबिहारी मिश्र विरचित उपन्यास 'कल्पतरु की उत्सव लीला' में वर्णित आध्यात्मिक स्वरूप और ईश्वर को देख लिया जाए जहाँ तक श्री रामकृष्ण की बात है उनके लिए उनकी माँ काली ही सब कुछ है। लेखक कृष्णबिहारी मिश्र के उपन्यास में श्री रामकृष्ण अपने एक भक्त मास्टर महेंद्रनाथ गुप्त को यह बताते हैं कि

प्रारंभ में केशव उनकी माँ को नहीं मानता था। परंतु एक दिन उन्होंने केशव को समझाते हुए कहा "तू जिसे ब्रह्म कहता है, उसे ही मैं काली कहता हूँ। माँ शब्द कितना कोमल है, कितना आत्मीय। केशव समझ गया और उसके कंठ से माँ शब्द उच्चारित होने लगा"।[21]..

किसी भी आध्यात्मिक महापुरुष के जीवन पर लिखे गए उपन्यासों में ब्रह्म का स्वरूप उस साधक के ब्रह्म चिंतन पर निर्भर करता है जिसकी जीवनकथा रचनाकार अपनी लेखनी से लिपिबद्ध कर रहा है। श्री रामकृष्ण के जीवन पर आधारित डॉक्टर कृष्णबिहारी मिश्र के इस उपन्यास में ब्रह्म का स्वरूप माँ का है। क्योंकि रामकृष्ण ने माँ के रूप में ही ब्रह्म दर्शन किया था। श्री रामकृष्ण के अनुसार ब्रह्म और काली में कोई भेद नहीं है। रामकृष्ण शक्ति के उपासक थे। परिणाम स्वरूप कृष्ण बिहारी मिश्र विरचित इस गद्यांश में भी ब्रह्म का चित्रण मातृ-शक्ति के रूप में किया गया है। आलोच्य गद्यांश में यहाँ माँ के स्वरूप को ही सर्वस्व माना गया है। ठाकुर श्री रामकृष्ण के अनुसार माँ शब्द कोमलता से परिपूर्ण है। उसमें गहरी आत्मीयता भरी हुई है। माँ के साथ संतान के अधिक नैक्टय का सम्बंध है। श्री रामकृष्ण का यह कथन कि जिसे ब्रह्म कहा जाता है वहीं काली है, 'अद्वैतवाद' की ओर संकेत करता हुआ दिखाई दे रहा है। श्री रामकृष्ण का संतान भाव है। अगर बात की जाए उनकी भक्ति के बारे में तो यह कहा जा सकता है कि उनकी भक्ति वात्सल्य भाव की है। इस गद्यांश के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि श्री रामकृष्ण के अनुसार मातृ भाव भक्ति के लिए श्रेष्ठ भाव है। माँ काली उनके लिए ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नही है। जो माँ है वह सगुण ब्रह्म है। मूर्ति केवल पाषाण प्रतिमा नहीं है बल्कि वह जीवंत प्रतिमा है वह अपने भक्तों से बातें भी करती है। एक माँ जिस प्रकार से अपनी संतान से सदैव वार्तालाप करती रहती है और उसके सुख-दुःख की बातें सुनती है। ठाकुर रामकृष्ण की माँ भी ठीक वैसी ही है। अपने प्रिय शिष्य नरेर जो अपने ब्राह्मसमाजी प्रभाव के परिणाम स्वरूप सगुण ईश्वर को नहीं मानते थे, वे प्रणाम नहीं करते थे। वे ठाकुर रामकृष्ण की आराध्या देवी को पुत्तलिका कहा करते थे। सगुण रूप भी निर्गुण की ही भाँति ईश्वर का ही रूप है। सगुण ईश्वर पत्थर की मूर्ति नहीं बल्कि वह परमब्रह्म का स्वरूप है, जीवंत है। श्री रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे कि 'हिंदू मृणमयी मूर्ति में चिन्मयी की उपासना करते हैं'। यहीं बात समझाने के लिए रामकृष्ण ने अपने प्रिय शिष्य दुलरुआ नरेंद्रनाथ दत्त को एक

मंगलवार को अपनी आराध्या देवी के पास मंदिर में भेजा था। उनके मन की यह हार्दिक इच्छा थी कि उनका प्रिय शिष्य नरेन उनकी आराध्या देवी को मान जाए क्योंकि आगे जाकर उसे तो माँ के कार्य को ही सम्पन्न करना है। वह तो इस संसार में आया ही इसी कारण है। अतः उसका माँ के ब्रह्म स्वरूप से परिचय हो जाना अत्यंत आवश्यक है। अतः उन्होंने नरेन को मंगलवार की रात को मंदिर भेज दिया। मंदिर में जाने के उपरांत नरेन को ऐसा प्रतीत हुआ कि मूर्ति जैसे जीवंत हो उठी हो। जो सगुण ईश्वर है और निर्गुण ईश्वर है उसमें कोई भेद नहीं है। लेखक मिश्र अपने उपन्यास में लिखते हैं कि "नरेन माँ के सामने आर्त कंठ से एक ही राग उच्चारता रहा, माँ वैराग्य दो, ज्ञान दो, भक्ति दो माँ ! माँ से नौकरी माँगने की बात वह हर बार भूल जाता"।[22].. इस प्रकार लेखक कृष्णबिहारी मिश्र ने अपने इस उपन्यास में यह बताया है कि नरेंद्रनाथ दत्त जो शुरू में अपने ब्राह्मसमाज के प्रभाव के कारण सगुण ईश्वर को नहीं मानते थे वे भी अपने गुरु की कृपा से सगुण ब्रह्म में समाहित ब्रह्म तत्व को पहचान गए थे और यह मानने को बाध्य हुए थे कि सगुण ब्रह्म और निर्गुण ब्रह्म में कोई अंतर ही नहीं है। जो सगुण है वहीं निर्गुण भी है।

एक तो देखा गया कि श्री रामकृष्ण ब्रह्म और काली को अभेद मानते हैं अर्थात् यहाँ अद्वैतवाद है। वहीं दूसरी ओर तीर्थों में मंदिरों के निकट उपस्थित दीन-दुखियों के रूप में ईश्वर की उपस्थिति को दर्शाया गया है जिनकी सेवा से व्यक्ति को तीर्थ दर्शन और ईश्वर की पूजा का पुण्य मिलता है। ठीक इसी प्रकार यहाँ एक और उदाहरण लिया जा सकता है कि किस प्रकार का व्यक्ति पण्डित है, ज्ञानी है, ईश्वर तुल्य है। आलोच्य उपन्यास में इस प्रकार के व्यक्ति के रूप में पंडित ईश्वरचंद्र विद्यासागर का नाम आया है। इस उपन्यास के पात्र ठाकुर रामकृष्ण कहते हैं कि "कमाई है विद्यासागर की। करुणा में पगा है उसका ज्ञान। जीवित देवता की पूजा करता है। सगुणोपासना। दुर्भाग्य-ग्रस्त लोगों की पूजा ही सच्ची भक्ति है। भक्त है विद्यासागर। न धूप, न दीप, न अक्षत, न रोली, न घंटी, न माला, न ज्ञान का दम्भ, न वेदांत का ढोंग। धोती-फतुआ, जनेऊ और मोटी टिकियावाले तो और भी हैं, पर विद्यासागर असली ब्राह्मण है, अपनी विद्या और करुणा के बल पर। करुणा को ही मेरी माँ सच्ची विद्या कहती है। उसी का मालिक है विद्यासागर, तभी उसके घर माँ ने मुझे भेजा

था। क्या आनंद कमाके लौटा था, जैसे तीर्थ कर लौटा होऊँ। अपनी करुणा के जोर से भक्ति में सबको पछाड़ देने वाला है विद्यासागर"।[23].. बचपन से ही श्री रामकृष्ण के मन में अद्वैतवाद की स्थिति थी। कदाचित यहीं कारण हैं कि वे एक स्त्री और पुरुष में कोई भेद ही नहीं मानते थे। वे अपने बचपन की एक घटना बताते हुए मास्टर महेंद्रनाथ गुप्त से कहते हैं कि "हृदय की बात तुझ से कहता हूँ, मुझे तो स्त्री-पुरुष में कुछ भेद ही नहीं दिखता था"।[24].. चाहे नारी हो या पुरुष हो वे सब उनके लिए आत्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं थे। उन्हें यह समस्त संसार उनकी आराध्या देवी माँ महामाया का ही स्वरूप प्रतीत होता था। आध्यात्मिकता और ईश्वर भक्ति के जितने भी स्वरूप है उनमें दूसरों की पीड़ा को दूर करने का प्रयास करना भी एक है। तुलसीदास ने लिखा है कि 'परहित सरिस धर्म नाहि भाई'। विद्यासागर के मन में सर्वदा दूसरों के कल्याण की भावना ही जागती रहती थी क्योंकि यहीं ब्राह्मण का कर्तव्य है और यहीं आध्यात्मिकता भी है। विद्यासागर की मातृ-भक्ति की तुलना नहीं की जा सकती। वे अपने माता के प्रति इतने अधिक समर्पित थे और भक्तिशील थे कि माँ की एक पुकार पर उन्होंने दामोदर जैसे विशाल नद को तैरकर पार करते हुए अपनी नौकरी छोड़कर माँ की सेवा करने हेतु अपने ग्राम में अपनी माता के निकट पहुँचे थे। इस प्रकार उन्होंने अपने कार्य से भी अपनी जननी की सेवा को महत्व दिया जो आध्यात्मिकता का ही रूप है।

ईश्वर के अनंत स्वरूप हैं और वह अपने भक्त को विभिन्न रूपों में अपनी भक्त की अभिलाषा के अनुसार ही दर्शन देता है। इस उपन्यास में यह बताया गया है कि ठाकुर श्री रामकृष्ण को अपने इष्ट देवी का दर्शन अपनी भार्या के रूप हुआ।इष्ट को भार्या के रूप में प्राप्त करना भी आध्यात्मिकता है। आलोच्य उपन्यास में लेखक डॉक्टर कृष्णबिहारी मिश्र ने यह दर्शाया है कि सरल और सात्विक मन आध्यात्मिकता का घर होता है। उपन्यासकार ने अपने उपन्यास के पात्र लाटू के द्वारा यह दर्शाने का प्रयास किया है। लाटू बहुत ही नेक और सरल मन का व्यक्ति है। लाटू के पास सांसारिक ज्ञान का अभाव था परन्तु आध्यात्मिक ज्ञान विद्यमान था। परिणाम स्वरूप एक बार वह शिव मंदिर के पीछे ध्यान करने बैठा तो इहलौकिक बोध ही लुप्त हो गया। वह अपनी साधना के फलस्वरूप शिव रूप ही होता

चला गया। ठाकुर स्वयं कहते हैं कि "मेरा लाटू है न, उसके पास उस ज्ञान की तो कुछ भी पूँजी नहीं है, जिसे दुनिया ज्ञान मानती है, पर उसकी संस्कार पूँजी देख ! एक बार शिव-मंदिर के पीछे ध्यान करने बैठा तो क्षणभर में उसका जगत बोध गायब। रामलाल घबराकर मेरे पास पहुँचा। जाकर क्या देखता हूँ साक्षात शिव समाधि-मुद्रा में मंदिर के बाहर बैठे हैं। प्रणाम निवेदित कर शिव रूप लाटू को पंखा झलता रहा खड़े खड़े"।[25].. इस प्रकार मानव जीवन की आध्यात्मिकता के विकास में मन की सरलता और सात्विकता की भूमिका है। यह सरलता और सात्विकता लाटू महाराज में प्रचुर मात्रा में विद्यमान थी। इस उदाहरण से एक और बात स्पष्ट होती है कि मनुष्य अपने सात्विक गुणों के कारण ही देवता बनता है।

बंधन मुक्ति भी आध्यात्मिकता की ही निशानी है। अहंकारहीनता ही आध्यात्मिकता की निशानी है इस पर बात करते हुए ठाकुर श्री रामकृष्ण कहते हैं कि उनकी माँ भवतारिणी ने उनसे एक बार कहा कि "यह घिनौनी भेद-बुद्धि, यह ब्राह्मण-ग्रंथि ! शर्म नहीं आती ! अहंकार का पहाड़ लादे माँ को पाना चाहता है। गाँठ खोल, नहीं माँ का दरवाज़ा खुलने से रहा"।[26].. श्री रामकृष्ण परमहंसदेव अपने जीवन का उदाहरण देकर यह बता रहे हैं कि मानव को ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में जो बाधाएँ हैं उन्हें दूर करने का प्रयास चाहिए। ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए कि आपको प्राप्त करने के मार्ग में जो बाधाएँ आ रही हैं आप अपनी कृपादृष्टि से उन समस्त बाधाओं को दूर कर दें ताकि मैं आपके निकट सरलतापूर्वक पहुँच सकूँ। श्री रामकृष्ण परमहंस की लाटू को लेकर यह मान्यता थी कि लाटू में शरणागति की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। उसका आधार कुटीलता से भरा हुआ नहीं है।

अतः यह कहा जा सकता है कि भगवान की प्राप्ति के लिए मन में ईश्वर के प्रति पूर्ण रूप से समर्पण की भावना होनी चाहिए। शरणागति की भावना आध्यात्मिकता का ही लक्षण है। नारद भक्ति-सूत्र में शरणागति के छः लक्षण बताए गए हैं अनुकूल संकल्प, प्रतिकूलता का वर्जन करना, इस बात के प्रति भक्त के मन में गहरी आस्था का होना कि संकट में भगवान रक्षा करते हैं। ईश्वर का वरण बाह्य आडंबर या दिखावटीपन के साथ नहीं करना चाहिए कि कोई भी व्यक्ति ईश्वर का कितना बड़ा भक्त है बल्कि ईश्वर का वरण

शांत चित्त होकर भक्तिपूर्वक गोपनीय रूप से ही किया जाना चाहिए। स्वयं को भगवान के श्री चरणों में समर्पित करते समय कृपणता का वर्जन करना चाहिए। अर्थात् एक भक्त भगवान के प्रति समर्पित होते हुए अपनी ओर से कोई कोताही न बरते।उसे सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिए। केवल ध्यान रखने से ही नहीं चलेगा बल्कि ध्यान रखने के साथ-साथ प्रयास भी करना चाहिए तभी भक्त आध्यात्मिकता और भक्ति के उच्च शिखर पर आरोहण कर सकता है। इस तरह उपन्यासकारों ने जीवनीपरक उपन्यासों में आध्यात्मिकता को दर्शाया है।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 अमृतलाल नागर, मानस का हंस, पृष्ठ संख्या 15

2 अमृतलाल नागर, मानस का हंस, पृष्ठ संख्या 17

3 अमृतलाल नागर, मानस का हंस, पृष्ठ संख्या 17

4 अमृतलाल नागर, मानस का हंस, पृष्ठ संख्या 21

5 अमृतलाल नागर, मानस का हंस, पृष्ठ संख्या 60

6 अमृतलाल नागर, मानस का हंस, पृष्ठ संख्या 63

7 अमृतलाल नागर, मानस का हंस, पृष्ठ संख्या 71

8 अमृतलाल नागर, खंजन नयन, पृष्ठ संख्या 18

9 अमृतलाल नागर, खंजन नयन, पृष्ठ संख्या 18

10 अमृतलाल नागर, खंजन नयन, पृष्ठ संख्या 20

11 रांगेय राघव, रत्ना की बात, पृष्ठ संख्या 15

12 रांगेय राघव, रत्ना की बात, पृष्ठ संख्या 15

13 रांगेय राघव, रत्ना की बात, पृष्ठ संख्या 15

[14] रांगेय राघव, रत्ना की बात, पृष्ठ संख्या 11

[15] रांगेय राघव, रत्ना की बात, पृष्ठ संख्या 39

[16] रांगेय राघव, रत्ना की बात, पृष्ठ संख्या 39

[17] रांगेय राघव, रत्ना की बात, पृष्ठ संख्या 57

[18] रांगेय राघव, रत्ना की बात, पृष्ठ संख्या 56

[19] रांगेय राघव, रत्ना की बात, पृष्ठ संख्या 94

[20] रांगेय राघव, रत्ना की बात, पृष्ठ संख्या 59, 60

[21] डॉक्टर कृष्णबिहारी मिश्र, कल्पतरु की उत्सव लीला, पृष्ठ संख्या 24

[22] डॉक्टर कृष्णबिहारी मिश्र, कल्पतरु की उत्सव लीला, पृष्ठ संख्या 25

[23] डॉक्टर कृष्णबिहारी मिश्र, कल्पतरु की उत्सव लीला, पृष्ठ संख्या 29

[24] डॉक्टर कृष्णबिहारी मिश्र, कल्पतरु की उत्सव लीला, पृष्ठ संख्या, 36

[25] डॉक्टर कृष्णबिहारी मिश्र, कल्पतरु की उत्सव लीला, पृष्ठ संख्या, 96

[26] डॉक्टर कृष्णबिहारी मिश्र, कल्पतरु की उत्सव लीला, पृष्ठ संख्या, 68